

बाल निर्माण की कहानियाँ

१६

बाल-निर्माण की कहानियाँ

(भाग-१६)



लेखिका :
डॉ० आशा 'सरसिज'



प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनर्मुद्रित सन् २०१४ मूल्य : ११.०० रुपये

विषय सूची



घनश्याम की वीरता

'तुम्हें रुपए देने हैं या नहीं' क्रुद्ध आवाज में दीवान भीमराव जी चिल्ला रहे थे।

'मैं जल्दी ही दे दूँगा। इस बार सूखा पड़ गया इसलिए नहीं दे पाया। आपने तो मेरी सदा सहायता ही की है। थोड़ी दया और कीजिए साहब।' दोनों हाथ जोड़कर गरीब कृषक कह रहा था।

'मैं कुछ नहीं जानता। बस मैं इतना ही कह रहा हूँ कि यदि तुमने एक सप्ताह के अंदर पैसे नहीं दिए तो तुम्हारे घर की नीलामी करा दूँगा। तुम्हें रुपए इसलिए नहीं दिए थे कि उन्हें दबा कर बैठ जाओ। मूल देना तो दूर रहा, तुमने तो दो वर्ष में ब्याज तक नहीं दी है।' दीवान जी चिल्लाकर बोले फिर वे क्रोध से पैर पटकते बैलगाड़ी में जाकर बैठ गए। उनके दोनों बेटे एक कोने में सहमे से खड़े यह सब सुन रहे थे। पिता की दृष्टि उन पर गई तो बोले— 'अरे तुम लोग क्या कर रहे हो यहाँ। स्कूल जाओ जल्दी से नहीं तो देर हो जाएगी।'

पिता का आदेश सुन कर घनश्याम और उसके भाई ने बस्ता उठाया और स्कूल की ओर दौड़ चले। रास्ते भर घनश्याम के मन में वही दृश्य उभरता रहा। दीवान जी का क्रोध से तमतमाया चेहरा और रौबीली आवाज जैसे उसके सामने अभी भी साकार थे। पिता का करुण चेहरा भी उसकी आँखों के आगे आ रहा था। उसने सुना था कि दीवान बड़ा कठोर है। जो कहता है, वह करते उसे देर नहीं लगती। वह अनेक गरीब व्यक्तियों को ऋण देकर उन्हें ऐसे ही

सताया करता था। कई बार तो घनश्याम ने लोगों को उसकी मौत की कामना करते हुए भी सुना था।

यही बात सोचते-सोचते घनश्याम कृष्ण काले आगे बढ़ रहा था कि बाजार के बीच में उसे दीवान जी की बैलगाड़ी दिखाई दी। कुछ हल्ला-सा भी सुनाई दिया। लोग इधर-उधर भाग रहे थे। घनश्याम भी एक ऊँची दुकान पर चढ़ गया और देखने लगा कि मामला क्या है ? उसने देखा कि दीवान की गाड़ी के बैल बिगड़ गए थे, वे तेजी से भाग रहे थे। उनके साथ जुती गाड़ी घिसटती पीछे चल रही थी। गाड़ी पर बैठे दीवानजी के हाथ से लगाम छूट चुकी थी। कुछ पल बाद ही उसने देखा कि गाड़ी उलट गई। जुआ तुड़ाकर एक बैल तो भाग गया, पर दूसरा दीवान जी को अपने सींगों से मारने दौड़ा। लोग अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहे थे। किसी का यह साहस न हो पा रहा था कि दीवान जी को बचाए। एक बार घनश्याम के मन में आया—'इसको अपनी करनी का दंड मिल रहा है।' पर शीघ्र ही उसे मास्टरजी की सीख याद आ गयी, जो सदा यह कहा करते थे कि संकट में पड़े हुए की रक्षा करना ही मनुष्यता है। वे बालकों को वीर बच्चों की कहानियाँ सुना-सुना कर उनमें वीरता का संचार किया करते थे। घनश्याम अपने प्राणों की परवाह न कर वहाँ से कूदा और दौड़कर बैल के सामने जा खड़ा हुआ। लोग साँस रोके यह दृश्य देख रहे थे। घनश्याम ने तेजी से बैल की रस्सी पकड़ी और अपनी ओर खींचने लगा। क्रुद्ध बैल और भी चिढ़ गया और दीवान को छोड़कर घनश्याम पर झपटा, पर घनश्याम तो पहले से ही इसके लिए तैयार था। उसने बिना समय खोए और साहस छोड़े विलक्षण चतुराई से जल्दी से बैल की रस्सी एक खंभे से लपेट दी। बैल को बँधा देख और भय का कारण दूर जानकर लोग पास आने लगे।

थोड़ी देर में बैल भी शांत हो गया। घनश्याम औ़र दूसरे व्यक्तियों ने मिलकर दीवान जी को उठाया।

उन्होंने घनश्याम को गले लगाते हुए कहा—'बेटा!' आज तुमने अपने प्राणों की परवाह न करके मेरी रक्षा की है। मैं तुम्हारे उपकार से झुक गया हूँ। किसके बेटे हो तुम?'

घनश्याम ने अपने पिता का नाम बताया तो उन्होंने ध्यान से उसकी ओर देखा। उन्हें याद आया कि जब वे किसान को डाँट रहे थे, तो यही बच्चा सहमा-सा एक कोने में खड़ा था। उनका मन उन्हें धिक्कारने लगा—'एक मैं पापी हूँ, जो दूसरों को सताता हूँ और एक यह है, जिसने मुझ अपकारी का भी ऐसा उपकार किया है।'

उन्होंने घनश्याम का हाथ पकड़ा और बोले—'चलो मैं तुम्हारे पिता से मिलना चाहता हूँ।'

वह किसान तो दीवानजी को फिर से आया देखते ही काँपने लगा। घनश्याम को उनके साथ देखकर उसका मन और भी भयभीत हो गया। इस शरारती बालक ने न जाने क्या अपराध किया है। अब तो भगवान ही रक्षक है।' वह मन ही मन सोचने लगा।

दीवान जी ने किसान को पूरी बात बताई और कहा कि पूरा पैसा उसने माफ कर दिया है। किसान बहुतेरा कहता रहा—'नहीं-नहीं मैं आपका पैसा दे दूँगा, बस मुझे थोड़ा समय और दे दीजिए।'' परंतु दीवान ने उसकी बात स्वीकार न की। वे बोले—'मैं तुम्हारे ऋण को कभी चुका नहीं सकता।'

घनश्याम कृष्ण काले के साहस और दयालुता ने पिता के संकट को भी दूर कर दिया, उसे वीर बच्चे के रूप में भी पुरस्कृत किया गया।



यथार्थ का मूल्य

कदली के अंक उस कक्षा में सबसे अधिक आते थे। वह पढ़ने में तो कुशल थी ही, परंतु व्यवहार में भी बहुत कुशल थी। जो अध्यापिकाएँ उसे पढ़ाया करतीं, उनके आस-पास वह किसी न किसी बहाने चक्कर लगाया करती। सभी से उसने कक्षा से अलग व्यक्तिगत संबंध बना रखे थे। कभी किसी शिक्षिका की प्रशंसा करती, कभी किसी को घर के बगीचे के पुष्प उपाहार में ला देती, तो कभी कलैंडर आदि। नए वर्ष व दीपावली पर वह शुभकामना पत्र भेजना भी न भूलती। परिणाम यह था कि शिक्षिकाएँ उससे अच्छी तरह परिचित थीं। सभी उसकी प्रशंसा करती थीं।

ऐसा न था कि कदली यह केवल दिखावे भर के लिए करती हो। उसके मन में अपनी शिक्षिकाओं के प्रति आदर था, श्रद्धा थी। वह थी ही व्यवहार कुशल। परंतु इस बार वह अपनी श्रद्धा का कुछ अधिक ही प्रदर्शन कर रही थी। उसका कारण था, कॉलेज का स्वर्ण पदक, जो इंटर कक्षा की सर्वश्रेष्ठ छात्रा को प्रतिवर्ष दिया जाता था। कदली शिक्षिकाओं को प्रभावित कर इस वर्ष का यह पदक स्वयं पाना चाहती थी। जो छात्रा खेलकूद, पढ़ाई सांस्कृतिक कार्यक्रम, भाषण, अनुशासन आदि सभी गतिविधियों में श्रेष्ठ होती, उसे ही यह पदक दिया जाता। परंतु कदली जानती थी कि निर्णायिकाएँ तो शिक्षिकाएँ ही हैं। यदि वह उन्हें ही प्रभावित कर ले, तो थोड़ा उन्नीस होने पर भी बात बन ही जाएगी।

कदली की प्रतिद्वंद्वी छात्रा थी अचला। वह भी पढ़ाई में तेज थी और कॉलिज की सभी गतिविधियों में भाग लेती थी, परंतु

उसका स्वभाव कदली से भिन्न था। वह शर्मीली लड़की थी, शिक्षिकाओं के आस-पास चक्कर नहीं लगाती थी। यद्यपि मन ही मन वह शिक्षिकाओं का बहुत आदर करती थी, परंतु कभी उसका प्रदर्शन न करती थी। गुरुजनों के सम्मुख जाते ही वह विनम्रता से झुक-सी जाती, कदली की भाँति बातें न बना पाती।

सत्र की समाप्ति होने लगी, तो शिक्षिकाओं की बैठक में यह विषय भी उठाया गया कि स्वर्ण पदक किसे दिया जाए। अधिकांश का मत कदली की ओर था। कुछ ही शिक्षिकाएँ ऐसी थीं, जो अचला का नाम भी ले रही थीं, परंतु उनकी आवाज कदली का समर्थन करने वाली शिक्षिकाओं की आवाज में दबकर गई थी। प्राचार्या स्वयं कदली के व्यवहार से प्रभावित थीं और उसी का नाम ले रही थीं। शैक्षिक तथा अन्य गतिविधियों के विवरण देखकर छात्रा के नाम को अंतिम रूप में स्वीकार किया जाता था।

कदली और अचला दोनों के समस्त कार्यों और योग्यताओं के विवरण प्राचार्या के कार्यालय में पहुँचे। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि न केवल शैक्षिक स्तर पर अपितु अन्य विविध गतिविधियों में भी अचला कदली से आगे थी। 'अरे इस छात्रा पर अभी तक हमारा इतना ध्यान क्यों नहीं गया?' वह मन ही मन सोचने लगीं। उन्हें ध्यान आया कि दो वर्ष पूर्व ही इस छात्रा ने दूसरे कॉलेज से आकर प्रवेश लिया है। एक सीधी, संकोची, कम बोलने वाली छात्रा का प्रतिबिम्ब उनके सामने आ गया। कदली उस विद्यालय में प्रारंभ से ही पढ़ी थी। वह भी प्रतिभाशाली थी, अतएव उसकी ओर ममत्व होना स्वाभाविक ही था। 'कदली ही इस पदक के योग्य है' प्राचार्या ने स्वयं से कहा। फिर वे दूसरे कार्य में लग गईं।

घर जाने पर न जाने क्यों यह विषय उनके मन में उमड़ता रहा। बार-बार उनका ध्यान चला जाता—'कदली या अचला।' शाम को जब

वह अपने बगीचे में बैठी थीं, तो आश्वस्त होकर फिर सोचने लगीं। उन्होंने दोनों की योग्यता सूची फिर निकाल कर देखी निस्संदेह अचला आगे थी। वह सोचने लगीं—'मैं क्यों पक्षपात करना चाह रही हूँ। मेरे लिए तो दोनों समान होनी चाहिए। न्याय की कुर्सी पर बैठाकर भी मैं अन्याय क्यों करूँ?' नहीं, नहीं, जो सर्वोच्च है, सम्मान उसी का होना चाहिए और अंतिम निर्णय के रूप में उन्होंने पदक के लिए अचला का नाम लिख कर दे दिया। उन्होंने स्वयं को हल्का महसूस किया।

फिर प्राचार्या सोचने लगीं कि बार-बार कदली का पलड़ा क्यों भारी बैठ रहा था। बारीकी से विश्लेषण करने पर पता लग गया कि कदली की व्यावहारिकता ही इसका मुख्य कारण है। व्यक्ति कितना ही योग्य क्यों न हो यदि उसमें व्यावहारिकता न हो तो वह जल्दी ही दूसरों को प्रभावित नहीं कर पाता। इसके विपरीत व्यवहार कुशल व्यक्ति योग्यता में कम होने पर भी अन्यों को आकर्षित कर लेता है। यह ठीक है कि योग्यता का अपना पृथक् ही स्थान है, पर कितने जौहरी ऐसे होते हैं, जो उसे परख पाते हैं ? व्यवहार शून्यता के कारण योग्य से योग्य व्यक्ति की प्रतिभा भी धूमिल पड़ी रहती है।

स्वर्ण पदक अचला को ही दिया गया, पर साथ ही जीवन में व्यवहार कुशल बनने के लिए निर्देश भी दिया गया।



सत्याग्रह

रोज-रोज की चख-चख से सारे बच्चे बुरी तरह परेशान हो उठे थे। सुबह और शाम उनकी पढ़ाई का समय होता और यही समय होता माँ और पिताजी के महाभारत का। शायद ही कोई दिन ऐसा जाता होगा, जब वे एक-दूसरे से उलझते न हों। छोटी-छोटी बातों को लेकर उनमें नोंक-झोंक प्रारंभ हो जाती। एक के कहने भर की

देर होती, बस दूसरे का टेप भी चालू हो जाता। एक बार बटन दबा तो फिर घंटे भर तक तो कम से कम बिना रुके चलता ही था। पिताजी से तो उनका कुछ कहने का साहस न होता था। माँ से वे कई बार कह चुके थे, पर वे उन्हें झिड़क देती थीं। दोनों में से कोई भी यह समझने को तैयार न था कि उनकी कलह से बच्चों के कोमल मन पर बुरा असर पड़ रहा है। उनकी पढ़ाई में व्यवधान आ रहा है। छोटी तो इसी चक्कर में छमाही परीक्षा में अनुत्तीर्ण भी हो गई थी। पिताजी ने उसके नन्हें गाल पर पाँचों उंगलियों के निशान छोड़ दिए थे और कहा—'पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगता तो छोड़ दे पढ़ाई। मेरा पैसा बरबाद मत कर।'

दोनों बड़े भाई शिशिर और शरद मन ही मन कुढ़कर कह रहे थे—'कभी कारण भी खोजिए कि हम क्यों अनुत्तीर्ण होते हैं? क्यों हम दोस्तों में सिर ऊँचा करके नहीं रह सकते। क्यों स्कूल में हर काम में पिछड़े रहते हैं। हमारी ठीक से देखभाल करना तो दूर, आप हमें साधारण वातावरण तक नहीं दे सकते, जिसमें हम शांतिपूर्वक रह सकें।'

छोटी उस दिन उन दोनों के पास आकर फूट-फूट कर रोई थी। तीसरी कक्षा की छोटी-सी बालिका, बेचारी और करती भी क्या? जैसे-तैसे उन्होंने छोटी को चुप कराया।

'भइय्या, अब चुप रहने से काम नहीं चलेगा, अब तो कुछ करना ही पड़ेगा' शरद ने कहा और अंत में उन्होंने योजना बना ही डाली।

माँ और पिताजी उस दिन शाम को जब जोर-जोर से बोलने लगे, तो तीनों अपना-अपना बस्ता लेकर बाहर निकलने लगे। माँ की दृष्टि पड़ी तो बोली—'कहाँ जाते हो तुम सब?'

'मंदिर में शिशिर ने कहा।'

'किसलिए?' उन्होंने आश्चर्य भरे स्वर में कहा।

'पढ़ने के लिए' शरद कह रहा था।

'क्यों, यहाँ पढ़ने में क्या मुसीबत है?' माँ झल्लाई-सी बोलीं।

'या तो आप लोग बोल ही लें या फिर हम पढ़ ही लें। दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते।' छोटी ने कहा।

'बहुत जवान चलने लगी है तेरी' माँ ने छोटी को डाँटा। सुनते हो जी' वे पति की ओर मुड़कर बोलीं।

तब तक तीनों बच्चे बाहर निकल चुके थे। दोनों सोच रहे थे कि बच्चे थोड़ी देर में घूम-घूम कर लौट आएँगे, पर वे रात होने पर ही घर लौटे। आकर, बिना कुछ बोले चुपचाप सो गए।

'खाना नहीं खाना तुम लोगों को?' चलो झटपट उठकर खाना खाओ, माँ ने आकर पुकारा।

पर तीनों में से कोई न उठा। माँ के बार-बार कहने पर भी उन पर कोई असर न पड़ा। 'देखूँगी कब तक नहीं खाओगे। रात में किसी को एक दाना भी न मिलेगा।' माँ गुस्से में भरकर झुँझलाती हुई चली गईं।

शरद और शिशिर ने छोटी से धीमे से कहा भी कि वह जाकर खाना खा ले, पर वह भी तैयार न हुई। मैं भी सत्याग्रह करूँगी।' कहकर चुपचाप लेटी रही।

एक-दो दिन इस घटना का प्रभाव रहा, पर तीसरे ही दिन फिर वही बात शुरु। और बच्चों ने भी वही रुख अपनाया। अब तो यह क्रम ही बन गया कि जब भी माँ और पिताजी लड़ते, बच्चे मंदिर में पेड़ के नीचे जा बैठते और अपना गृह कार्य पूरा करके ही लौटते। उस दिन वे खाना भी न खाते। उन्होंने कहीं से एक सूक्ति भी लाकर बरामदे में चिपका दी थी—'जो बच्चों को सिखाते हैं, बड़े भी उस पर अमल करने लगें, तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन जाए।'

माँ और पिताजी के परिचित मिलते तो स्वाभाविक ही था कि वे उनसे पूछते—'आपके बच्चे मंदिर में जाकर क्यों पढ़ते हैं?' वे

मन ही मन झुँझलाते। बच्चों की भोजन की हड़ताल से तो उनका मन पहले से दुःखी था ही। सच तो यह था कि जिस दिन बच्चे न खाते थे, उन दोनों के मुँह में भी खाना न जा पाता था और वे दोनों भूखे ही सो जाते थे। बासा खाना दूसरे दिन कुत्ते या गाय को खिला दिया जाता। माता-पिता दोनों ने आखिर में यही समझौता किया कि वे ही गलत कर रहे हैं, वे अपने आप पर नियंत्रण रखेंगे। वे एक-दूसरे से लड़ेंगे-झगड़ेंगे नहीं, जो भी बात होगी, उसे सहज ढंग से एक-दूसरे से कहेंगे-सुनेंगे। बरामदे में बच्चे ने जो सूक्ति लगाई थी, आते-जाते उनकी निगाह उस पर भी पड़ती थी और चेतन-अचेतन रूप से वे उस पर विचार भी करते थे।

परंतु कोई भी आदत एकदम नहीं बदलती। सप्ताह भर तो उन्होंने स्वयं पर नियंत्रण रखा। फिर एक दिन जैसे ही दोनों में झड़प हुई, बच्चे दरवाजे की ओर बढ़े, पिताजी जोर से चिल्लाये—'ठहरो! इधर आओ।'

बच्चे सोच रहे थे कि शायद अब पिताजी गुस्से में भरकर उन्हें मारेंगे, पर हुआ इसका उल्टा। वे कह रहे थे—'बस बहुत हुआ। हम लोग ही मंदिर जाते हैं। तुम सब घर में बैठकर शांति से पढ़ो।'

स्वाभाविक ही था कि मंदिर जाकर लड़ते तो नहीं। वे गए और घूम-फिर कर हँसते हुए लौट आए। बच्चों की प्रसन्नता का उस दिन आर-पार ही न था। अपनी योजना की सफलता में उस दिन उन्होंने पापा के लौटने से पूर्व ही हलवा, चाय और पकौड़ी बनाई और लौटने पर इन चीजों से सत्कार किया।

यदि व्यक्ति दृढ़ संकल्प कर ले, अभ्यास कर ले तो गलत आदत भी कुछ समय में छूट जाती है। माता-पिता की भी लड़ने-झगड़ने की आदत धीरे-धीरे बंद हो गई थी। शिशिर, शरद और छोटी का सत्याग्रह सफल रहा। 

विज्ञापन

उस दिन अंततः मरुत ने अपने मन की कर ही ली। डाक में पत्र डालकर जब वह घर लौटा तो उसके पैर जमीन पर ही न पड़ रहे थे। वह उस दिन की कल्पना करने लगा, जब जल्दी ही उसके हाथ में भी कैमरा होगा और वह भी शुशांत की तरह सुंदर-सुंदर फोटो खींच सकेगा। उसने घर जाकर अपनी गुल्लक खोली और पूरे पिच्चानवे रुपए गिनकर एक लिफाफे में डाले। अब उस लिफाफे को अपनी पुस्तकों की अल्मारी में बिछे कागज के नीचे सावधानी से इस प्रकार रख दिया कि वह जल्दी ही मिल जाएँ।

अखबार में दिए विज्ञापन में लिखा था, कि ग्राहक का पत्र मिलने के पंद्रह दिन के अंदर वी.पी.पी. से कैमरा उसे मिल जाएगा। वह बेचैनी से एक-एक दिन की प्रतीक्षा करने लगा। डर बस एक ही था-वह कहीं मम्मी के हाथ न पड़ जाए। वैसे तो बहुत सावधानी रखी थी। दस दिन बाद ही उसकी परीक्षाएँ प्रारंभ होने वाली थीं और उन दिनों वह ग्यारह बजे तक घर आ जाता था। डाकिया भी इसके बाद ही आता था।

स्कूल से लौटकर तुरंत पुस्तक लेकर ड्राइंग रूप में बैठ जाना मरुत का प्रतिदिन का क्रम बन गया था। मम्मी उससे कहतीं थोड़ा आराम कर लो, फिर पढ़ लेना, पर वह मानता ही न था। वे सोचतीं परीक्षा हैं इसलिए जुटा हुआ है, पर सचाई कुछ और ही थी। मरुत तो वहाँ डाकिए की प्रतीक्षा में बैठा होता। उस समय मम्मी प्रायः रसोईघर में होतीं। डाकिए के आते ही वह तुरंत वी.पी.पी. छुड़ा लेगा, यह सोचकर वह वहाँ बैठता।

और बीसवें दिन ऐसा ही हुआ। हाथ में एक पैकेट लेकर आते डाकिए पर जैसे ही मरुत की दृष्टि गई वह तुरंत पुस्तक में रखे रुपए का लिफाफा लेकर दरवाजे पर आ गया। उसने जल्दी से हस्ताक्षर किए, रुपए दिए और पैकेट लेकर वह सीधे आलमारी की ओर बढ़ गया। कपड़ों की तह के नीचे उसने चुपचाप से वह छुपा दिया। कल अंतिम प्रश्न–पत्र था, पर उसका मन पढ़ने में बिलकुल भी न लग रहा था। कब मम्मी काम समाप्त करके सोएँ और वह उस पैकेट को खोले–यही बेचैनी उसे थी। उससे ठीक से खाना भी न खाया गया। तीसरे प्रहर जैसे ही मम्मी लेटीं उसने तुरंत आलमारी से पैकेट निकाला, जल्दी से उसे खोला। अब उसके हाथ में एक कैमरा था, पर मरुत उसे देखते ही उदास हो गया। वह देखने में इतना सुंदर न था, जितना विज्ञापन में दिखाई देता था। यह तो बहुत साधारण–सा बॉक्स कैमरा था, पर अब किया भी क्या जा सकता था? 'शायद इसके फोटो अच्छे हों, यह सोचकर मरुत ने अपने मन को ढाढ़स बँधाया।'

घर जाकर वह खा–पीकर खेलने निकल गया। 'एक घंटे के अंदर वापिस आ जाना। मुझे बाजार जाना है।' माँ ने आदेश दिया। आज मरुत झुँझलाया नहीं, अपितु, प्रसन्न हुआ। उसे एकांत ही चाहिए था। माँ के घर पर न होने से वह आश्वस्त होकर कैमरे का प्रयोग कर सकेगा। लौटते समय मरुत सुमित को भी अपने साथ ले आया। उसे कैमरे का प्रयोग आता था। मम्मी के जाते ही दोनों ने झट कैमरा निकाला और उसकी निर्देशन पुस्तिका को ध्यान से पढ़ने लगे। उसकी बताई विधि से कैमरे में रील चढ़ाई। दोनों ने पढ़कर यह भी समझ लिया कि किस प्रकार से फोटो खींचना है? मरुत बहुत उत्साह से भरा हुआ था। उसने सुमित को बरामदे में एक बेल के पास ले जाकर खड़ा कर लिया, पर अभी उसका मन न भरा। वह

तो कई फोटो खींचना चाहता था। 'चलो एक फोटो शेरू का खींचते हैं, वह भी क्या याद करेगा बच्चू सुमित ने कहा। मरुत जल्दी से दौड़कर एक कुर्सी लाया।' सुमित ने उस पर शेरू को बैठाया। मरुत ने रीलका नंबर बदलने के लिए जैसे ही एक बटन घुमाया, वह खड़ाक की आवाज करता हुआ जमीन पर गिर पड़ा। 'अरे! यह क्या हुआ?' दोनों के मुँह से एक साथ निकला। मरुत का मुँह फक पड़ गया। सुमित सोच रहा था 'अच्छा है इसी के हाथ से टूटा, नहीं तो मेरे पीछे पड़ता।'

मरुत ने रील बदलने की बहुत कोशिश की, पर सब बेकार। 'यह तो टूट चुका है, बटन दूसरा डलवाना पड़ेगा।' सुमित बोला।

'यह तो नया का नया ही टूट गया, विज्ञापन में तो छः मास की गारंटी लिखी थी और बहुत तारीफें भी लिखी थीं।' मरुत बड़बड़ाने लगा।

उधर शेरू वह काला डिब्बा देखकर बराबर भौंके जारहा था। जब दोनों ने उसकी ओर ध्यान न दिया तो वह कूदकर उनके पास जाकर भौंकने लगा। 'चल हट, भाग यहाँ से' कहकर मरुत ने उसे झिड़क दिया। उसका मन बहुत खराब हो गया। उसने सुमित को भी विदा किया और गुमसुम-सा पड़ गया। उसने उसे माँ और पिताजी को विज्ञापन की चीजें लेने को कहा था, तो उन्होंने उसे यही समझाया था कि ये लोग बस अपने पैसे बनाते हैं। अच्छी वस्तुओं का प्रचार करते हैं और खराब चीजें भेज देते हैं। अब ठोकर खाकर मरुत सोच रहा था-'काश ! मैंने उनकी बात पर ध्यान दिया होता।' 'कहीं माँ और पिताजी के हाथ पड़ गया, तो अच्छी-खासी डाँट खानी पड़ेगी' वह यह भी सोच रहा था। उसने तो सोचा था कि चुपचाप से उनका फोटो खींचकर उन्हें दिखाएगा, तभी कैमरे के विषय में बताएगा, पर सोचा हुआ सब गुड़ गोबर हो गया।

मरुत का किसी काम में मन ही न लग रहा था दो दिन से वह गुमसुम-सा घूम रहा था। माँ ने उसकी उदासी का कारण जानना भी चाहा, पर वह 'कुछ नहीं' कहकर टाल गया।

एक दिन मरुत घर में नहीं था। माँ ने पैन लेने के लिए उसकी आलमारी खोली। तभी सहसा किताब-कापियों के पीछे छिपा कैमरा उनके हाथ लग गया। उन्होंने उसे उलट-पुलट कर देखा। वे समझ न पायीं कि मरुत इसे कहाँ से लाया है? वे कभी-कभी मरुत की आलमारी की साज-सँवार करती रहती थीं, पर उन्होंने कभी भी ऐसी कोई चीज न पाई थी। कुछ खोजबीन करने पर उनके हाथ कैमरे के साथ आए कागज भी पड़ गए। उसमें कंपनी का पूरा नाम-पता भी छपा था। अब उनकी समझ में पूरी बात आ गई। उन्हें याद आया कि पिछले कई महीनों से मरुत कैमरे के लिए कह रहा था। उसने वह विज्ञापन दिखाकर भी कहा था कि यह तो सस्ता है, इसे ही खरीद लूँ, पर वह और उसके पिता दोनों टाल गए थे, 'अभी तुम छोटे हो। पढ़ने में मन लगाओ।'

'इसने पैसे कहाँ से लिए?' माँ सोचने लगी। उन्होंने तुरंत उसकी गुल्लक खोली। उसके जन्मदिन पर आए रुपए भी उसी में थे। वे सोचती थीं कि उससे मरुत के लिए अच्छा-सा उपहार खरीद देंगी। गुल्लक से रुपए नदारद थे। अब सारी बात उनकी समझ में आ गई। मरुत ने चोरी भी की है, यह जानकार उन्हें बहुत बुरा लगा। शाम को जब मरुत के पिताजी आए, तो उन्होंने टूटे कैमरे की पूरी बात बताई। वह बहुत ही सुलझे हुए व्यक्ति थे। उन्होंने अनुभव किया कि जब मरुत कैमरा लेने की जिद कर रहा था, तब उन्हें उसे अच्छी प्रकार से समझाना चाहिए था। साथ ही एक अवधि भी निश्चित कर देते, तो वह इस प्रकार मनमानी नहीं करता। दोनों ने निश्चय किया कि अब उसे डाँटकर नहीं अपितु

प्यार से समझाना होगा, जिससे वह कभी इस प्रकार की मनमानी न करे।

माँ इस अवसर की तलाश में थीं कि कैसे ही कैमरे की बात खुले। मरुत रात को माँ-पिताजी को सोया जान कैमरे को ठीक करने की कोशिश कर रहा था। तभी अचानक माँ उसके सामने जाकर खड़ी हो गईं। वह बुरी तरह चौंक गया और कैमरा उसके हाथ से छूट गया। माँ ने आगे बढ़कर कैमरा पकड़ लिया और बोलीं-'कहाँ से आया यह?'

मरुत सिर नीचा करके चुपचाप खड़ा रहा। एक बार जी में भी आया कि झूठ बोल दे, पर ऐसा कर न सका। 'जो सचाई है, उसे स्वीकार करना ही चाहिए, इसी में मेरा प्रायश्चित है। फिर चाहे मुझे कितनी ही डाँट क्यों न खानी पड़े?' उसने सोचा। उसने पूरी बात माँ को बता दी। 'तुमने हमसे बिना पूछे ऐसा किया यह अच्छा नहीं है।' माँ ने उस समय तो बस इतना ही कहा और सोने के लिए कहकर वे चली गईं, पर मरुत की आँखों में नींद कहाँ थीं? वह बहुत देर तक करवट बदलता रहा। कल उसे पिताजी का सामना जो करना था।

सुबह चाय के समय वह अपराधी-सा सिर झुकाए बैठा रहा, अपनी बात खुलने की प्रतीक्षा करता रहा। नाश्ता समाप्त होने के बाद माँ ने उसे कैमरा और कागज लाने का आदेश दिया । उसने चुपचाप लाकर सारी चीजें पकड़ा दीं और अखबार उठाकर पढ़ने का बहाना करने लगा। उसके कान पूरी तरह से माता-पिता की बात पर ही थे।

पिताजी ने सारी चीजों को ध्यान से देखा-पढ़ा। आश्चर्य कि वे नाराज होने की अपेक्षा उसकी ओर देखकर शांत भाव से कह रहे थे-'मरुत महोदय! आपने बिना हमसे पूछे यह मँगाकर बहुत बड़ी गलती की है।'

'जी' वह सिर झुकाकर बस इतना ही कह पाया।

'अब आप पहले तो यह वायदा कीजिए कि आगे से विज्ञापन की कोई वस्तु नहीं मँगाएँगे, मँगाएँगे तो मुझसे या अपनी माँ से अवश्य पूछ लेंगे।'

'जी पिताजी।' मरुत बोला।

पिता फिर आगे समझाने लगे-'मैंने तुम्हें कितनी बार समझाया कि विज्ञापन में तो ये बड़ा प्रलोभन देते हैं, पर चीज सामने आती है, तो निराश हो जाना पड़ता है। यह कैमरा बहुत ही सस्ता है। कैमरा लेने के लिए तुम इतने ही उत्सुक थे, तो फिर तुमने हमसे कहा होता? उन रुपयों में ही और रुपए डालकर हम तुम्हें अच्छा-सा दिला देते।'

'बहुत बड़ी गलती हो गई। आगे से कभी ऐसा नहीं होगा?' मरुत ने कहा।

'पर इसका क्या होगा यह तो सोचिए?' माँ बोलीं।

'इस रद्दी कैमरे को मैं आज ही वापस भेज देता हूँ। इसमें छः महीने की गारंटी दी गई है, पर यह तो छः दिन भी नहीं चला। मैं एक कड़ा-सा पत्र लिखकर इसके साथ रखता हूँ। उसमें यह भी लिख दूँगा कि यदि रुपए वापस न करेगा, तो इसे नोटिस भी भेजूँगा।' पिताजी कुछ उत्तेजित होकर बोले।

मरुत ने कुछ चैन की साँस ली। उसे रुपए बेकार जाने का बहुत ही दुःख हो रहा था। वह एक-एक दिन करके उत्तर वापिस आने की प्रतीक्षा कर रहा था। 'उसकी मूर्खता के कारण पिताजी को कितना परेशान होना पड़ेगा।' यह वह सोच रहा था। पिताजी को वह अच्छी प्रकार जानता था कि गलत बात वह सह नहीं पाते थे और उसका पूरा विरोध करते थे। फिर चाहे उन्हें हानि ही क्यों न उठानी पड़े। लगभग एक मास बाद उस कंपनी से ४५ रुपए का धनादेश आ गया, 'टूट-फूट आधी आप उठाएँ, आधी हम' ऐसा लिखा था।

'कुछ न मिलने से इतना ही मिलना ठीक है।' मरुत के पिता ने कहा, पर मरुत अभी भी इतने रुपयों की हानि से खिन्न था।

'तुम यदि हाईस्कूल की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होगे, तो तुम्हें अच्छा-सा कैमरा पुरस्कार में मिलेगा।'

'अच्छा लालच दे रहे हैं।' माँ ने कहा।

परंतु मरुत उत्साहित होकर बोला-'नहीं मम्मी......यह लालच नहीं। मैंने जो बड़ी भूल की है, उसका अच्छे अंक लाकर प्रायश्चित करना है और इसके लिए खूब कठोर परिश्रम करना है। फिर आगे यह तो आपकी प्रसन्नता होगी कि उपहार देंगे.......।'

पिताजी भी हँस पड़े और बोले-'यह हुई न हमारे बेटे जैसी बात।'



चतुर दुल्हन

सर्वोदय एक्सप्रेस पूरी गति से गुजरात की ओर दौड़ी चली जा रही थी। खिड़की के किनारे बैठी नई दुल्हन जयश्री बाहर देखती हुई विचारों में खोई थी। दिल्ली में पली और पढ़ी जयश्री सोच रही थी 'न जाने कैसा होगा अहमदाबाद! न जाने कैसे होंगे वहाँ के व्यक्ति!! अब तो उसे वहाँ ही बसना है।' वह अपने नए परिवार के विषय में भी सोच रही थी। बीच-बीच में वह बारातियों पर भी दृष्टि डाल लेती। दूल्हे सहित कुल पाँच व्यक्ति ही तो आए थे विवाह में। सभी आरंभ से बैठे गप-शप कर रहे थे। पास वाली सीट के एक युवक और एक युवती भी उनके पास बैठकर बातों में लीन थे। बस जयश्री ही थी, जो चुप बैठी थी। कभी-कभी पास बैठे दूल्हे राजा से ही एक-आध वाक्य बोल लेती थी। वह घूँघट नहीं किए थी, दुल्हन की लाज और संकोच का घूँघट तो था ही।

जयश्री ध्यान से सभी की बातें सुन रही थी। उसने पाया कि युवक-युवती उसके परिवार से जल्दी ही बहुत घुल-मिल गए हैं। वे बता रहे थे कि उन्हें भी अहमदाबाद ही जाना है। वे वहीं रहते हैं, वहाँ उनकी कपड़े की मिल है। देखने में भी सौम्य और संपन्न लग रहे हैं।

रास्ते में सभी खाते-पीते चल रहे थे। कभी चिउड़ा, कभी श्रीखंड तो कभी खमन ढोकला। गुजराती खाने-पीने का ढेर सारा सामान रखा था। युवक-युवती भी पास बैठे थे, सभी से घुल-मिल गए थे। अतएव सब अपने साथ-साथ उन्हें भी खिला रहे थे। वे 'न-न' भी कर रहे थे, परंतु साथ बैठे थे, परिचित हो चुके थे, इसलिए उन्हें भी खिलाना सामान्य शिष्टाचार था। रास्ता लम्बा हो तो प्रायः सहयात्री ऐसा करते ही हैं। उस युवती ने भी अपना टिफिन खोला और बर्फी निकालकर सबकी प्लेट में रखने लगी। उन लोगों ने बहुत मना किया कि हमारे पास तो बहुत सामान है, पर युवती मानी ही नहीं और बोली—'वाह, आप अपना ही खिलाए जा रहे हैं। हमारा भी तो कुछ चख कर देखिए। बहुत स्वादिष्ट काजू की बर्फी है।'

जयश्री सबकी प्लेटों में बर्फी रखती उस सुंदर युवती को देखे जा रही थी। उसने यह भी ध्यान दिया कि युवती ने अपनी और अपने साथी की प्लेट को छोड़ दिया था। जयश्री के मन में तुरंत विचार आया 'ये स्वयं क्यों नहीं ले रहे हैं ?'

जयश्री ने उससे कहा—'आप भी तो लीजिए न !'

आप लोगों ने इतना खिला दिया कि सचमुच चूरण खाना पड़ेगा। 'लीजिए आप लोग और लीजिए' बर्फी का डिब्बा आगे बढ़ाते हुए वह कहने लगी।

'नहीं, हम लोग भी बहुत खा चुके हैं।' जयश्री के स्वसुर कहने लगे।'

जयश्री तो वैसे भी बहुत कम खा रही थी। माता-पिता का घर, पुराने सभी रिश्तेदार छोड़ते उसका मन उदास था। उसकी प्लेट में अभी भी बहुत सामान बचा था। परंतु बर्फी खाने की उसकी बिल्कुल भी इच्छा न हुई। वह सोचने लगी, देखने में कितने ही भले लगते हों, बातचीत में कितने ही अच्छे हों, पर क्या इन अपरिचितों की चीज खाना उचित है? इस समय हमारे पास रुपए, कीमती कपड़े, सामान और गहने भी हैं।' जयश्री ने उस बर्फी को छुआ भी नहीं, उसने सबकी आँख बचाकर कागज की प्लेट मोड़कर खिड़की से बाहर फेंक दी। सब बर्फी की तारीफ कर रहे थे, तो जयश्री ने भी प्रशंसा कर दी।

खाते-पीते रात होने लगी। थके हुए तो सब थे ही। सबने अपने-अपने बिस्तर लगा लिए। जयश्री को ऊपर वाली शायिका पर भेज दिया गया। सामने ही पति महोदय भी लेट गए। उन्होंने गहनों और रुपयों वाला ब्रीफकेस सिर के नीचे लगा रखा था। जयश्री ने देखा कि पंद्रह-बीस मिनट में ही उनकी आँखें मुँद गईं और खर्राटे लेने लगे। उसने नीचे झाँका-सभी सोए हुए पड़े थे, पर थके होते हुए भी जयश्री की आँखों में नींद न थी। हाँ थकान और भाग-दौड़ से उसका सिर अवश्य भारी हो रहा था। वह भी आँखों पर अपनी कोहनी मोड़कर लेट गई। बीच-बीच में वह पति को भी निहारती जाती थी।

जयश्री ने कुछ सरसराहट-सी सुनी तो वह चौंकी। उसने कनखियों से पति की ओर देखा तो पाया कि युवक नीचे खड़ा उनके सिरहाने के गहनों वाला ब्रीफकेस धीरे-धीरे निकाल रहा है। जयश्री ने पल भर में निर्णय लिया और कपड़ों से भरा अपना सूटकेस, जो उसके सिर के नीचे लगा था, खींचकर पूरी शक्ति से युवक के सिर पर पीछे से दे मारा।'

'हाय' चिल्लाकर वह वहीं बैठ गया। युवती उसे पकड़ने आयी, तब तक तो जयश्री झट से कूद कर उसके पास पहुँच चुकी

थी। उसने युवती की बाँह को पूरी शक्ति से पकड़ लिया और जितना जोर से चिल्ला सकती थी, चिल्लाई-'चोर-चोर, पकड़ो-पकड़ो।'

रात के सन्नाटे को चीरती हुई जयश्री की आवाज डिब्बे में गूँज उठी। पास वाले कई यात्री और गार्ड भी वहाँ दौड़े चले आए। युवक तो बेहोश पड़ा था। युवती जयश्री से झगड़ रही थी-'तू मुझ पर झूठा आरोप लगाती है।'

गार्ड ने आकर युवती को पकड़ लिया। जयश्री ने पूरी बात विस्तार से बताते हुए कहा-'मुझे शक है कि बर्फी में कुछ नशीली चीज मिली हुई है।'

तब तक स्टेशन भी आ चुका था। पुलिस आई और दोनों को गिरफ्तार कर लिया। डॉक्टर ने दवा सुँघाकर सभी बारातियों को होश दिलाया। वे तो समझ रहे थे कि अहमदाबाद आ गया है, इसलिए उन्हें उठाया जा रहा है। आँख मलते हुए वे उठ बैठे और पुलिस तथा भीड़ को देखकर भौंचक्के रह गए। उनकी समझ में कुछ न आ रहा था। कुछ देर बाद जब पूरी बात उनकी समझ में आई तो उन्हें जयश्री पर गर्व होने लगा। इसके बाद पूरी रात उनकी पलकें भी न झपकीं। वे जयश्री की प्रशंसा कर रहे थे-'अब हम सब जगे हुए हैं।' तुम निश्चिन्त होकर सो जाओ, बहुत थकी होगी।'

जयश्री मन ही मन मुस्करा रही थी। थोड़ी-सी सावधानी और सूझबूझ से बड़ा संकट टल गया था।

दूसरे दिन अखबार में भी जयश्री के साहस का यह समाचार छपा। बर्फी में नशीली चीज मिली हुई थी। युवक और युवती यात्रियों को नशीली चीज खिलाकर लूटने वाले गिरोह के ही सदस्य थे। दोनों को जेल भेज दिया गया था।



नया प्रकाश

गिरि का मन पढ़ने में बिलकुल नहीं लगता था। स्कूल में मास्टर साहब पढ़ा रहे होते तो एकाग्र न हो पाता। वह कभी कहीं देखता तो कभी कुछ सोचने लगता। गणित, अँग्रेजी ये विषय तो उसे बहुत बुरे लगते। गणित का घंटा तो सबसे बाद में पड़ता था। वह जब तब अंतिम घंटा छोड़कर स्कूल से भाग आता। कभी किसी बगीचे में घूमता रहता तो कभी बाजार में। कभी घर जल्दी पहुँच जाता तो छुट्टी जल्दी होने का बहाना बना देता।

गिरि की मासिक प्रगति-आख्या अधिकतर खराब ही होती। वह दो-तीन विषयों में अनुत्तीर्ण होता। पिताजी प्रायः उसे डाँटते रहते, क्योंकि घर पर उसका अधिकांश समय खेलने या टी०वी० देखने में ही बीतता था, पर वह पिताजी की डाँट को भी अनसुनी कर देता। गिरि के पिता पीतल का व्यवसाय करते थे। गिरि सोचता था कि वह पढ़े या न पढ़े उसे क्या अंतर पड़ेगा? वह तो अपने पिता की दुकान पर काम में लग ही जाएगा। घर की आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी, अतएव उसे लगता था नौकरी तो करनी नहीं, पढ़-लिखकर क्या करना है?

अन्य दिनों की भाँति गिरि उस दिन भी घर से जल्दी चला आया। उसके पास कुछ पैसे थे। बाजार में जाकर उसने चाट खाई फिर थोड़ी देर वह धूप और गर्मी में भी बाजार में घूमता रहा। उसे तेज प्यास लगी तो ठंडे पानी की मशीन की ठेल के पास रुक गया। एक बड़ा लड़का वहाँ खड़ा पढ़ रहा था। 'ठेल वाला कहाँ है, पानी चाहिए।' बीस पैसा का सिक्का उसकी ओर बढ़ाते हुए गिरि बोला।

लड़के ने चुपचाप पुस्तक एक ओर रखकर पानी दे दिया। गिरि ने पानी पीकर इधर-उधर नजर दौड़ाई, तो उसे कोई दूसरा दिखाई न दिया। 'क्या यह ठेल तुम्हारी है ? उसने लड़के से पूछा।'

उसने 'हाँ' में सिर हिला दिया।

'दिखाना, यह तुम कौन-सी कहानी पढ़ रहे हो ? गिरि ने उसकी ओर हाथ बढ़ाते हुए पूछा।'

'यह कहानी की पुस्तक नहीं है भाई, दसवीं कक्षा की पुस्तक है।' लड़के ने कहा।

'दसवीं की पुस्तक!' गिरि आश्चर्य से बोला।

'हाँ मैं परीक्षा दे रहा हूँ।' लड़का बता रहा था।

'अरे भाई तुम्हें परीक्षा देने की क्या आवश्यकता पड़ गई ? ठेला चलाकर पैसे तो कमा लेते हो, खाओ-पीओ और मौज मनाओ।' गिरि ने उससे कहा।

अब लड़के ने पुस्तक रखकर पहली बार ध्यान से गिरि की ओर देखा।

'कैसे पढ़ने वाले बच्चे हो तुम, आठवीं-नवीं में तो पढ़ते ही होगे ? पढ़ाई का मूल्य नहीं समझते! पिता सुविधाएँ दे रहे हैं पढ़ने की शायद इसीलिए।' वह बोला।

'भई ! तुम तो बुरा मान गए। मैं तो यों ही पूछ रहा था कि पढ़ने से क्या लाभ है ?' गिरि धीमे स्वर में बोला।

'पढ़ लिखकर कोई अच्छा काम पा जाऊँगा, अच्छी नौकरी पर लग जाऊँगा या फिर कोई ट्रेनिंग ही ले लूँगा। हमेशा ठेला लेकर घूमने और पानी बेचने से तो छुट्टी मिल जाएगी। यह काम देखने में जितना सरल लगता है, उतना है नहीं। अभी तो माँ और मैं हूँ, थोड़े रुपयों से गुजर हो जाती है, पर आगे चल कर तो परेशानी होगी ही न। यह ठेल तो मेरे पिताजी चलाते थे, इसलिए उनके मरने के बाद

जरूरत होने के कारण मैं भी चलाने लगा हूँ। मेरे पिताजी की बहुत इच्छा थी कि पढ़-लिखकर किसी अच्छे काम पर लग जाऊँ।'

मुझे योग्य बनकर उनकी इच्छा भी पूरी करनी है।' लड़का उसे विस्तार से बताने लगा।

अब गिरि ने उसे अपनी बात भी बात दी कि उसके पिताजी तो उसे पढ़ाना चाहते हैं, पर उसका मन पढ़ने में नहीं लगता। वह न पढ़े तो हानि भी क्या है? पिता का व्यापार है ही, उसी में लग जाएगा।

पानी बेचने वाला लड़का बहुत समझदार था। वह गिरि को समझाने लगा कि उसके पिताजी ठीक कहते हैं। जीवन में पता नहीं कब, कैसी परिस्थिति आ जाए। पिता के पास पैसा है, इसलिए पढ़ाई छोड़कर बैठना बुद्धिमानी नहीं है। धन तो आज है, कल जा भी सकता है, परंतु उसने बताया कि किस प्रकार उसके पिता को व्यवसाय में बहुत घाटा हो गया था। पढ़े-लिखे वह थे नहीं इसलिए परिवार के भरण-पोषण के लिए पानी का ठेला ही लगाना पड़ा। इस घटना से उन्होंने सबक ले लिया था कि बेटे को जितना संभव होगा पढ़ायेंगे फिर चाहे वह नौकरी करे या व्यापार।

गिरि को सहसा ही अपने पिता की बात याद आ गई। वह प्रायः उसके न पढ़ने पर नाराज होकर कहा करते थे-'पढ़ेगा नहीं तो ठेला लगाएगा।' उनकी बात वह हमेशा कान से उतार देता था, पर आज वह समझ गया कि पिता उसे न पढ़ने के लिए क्यों डाँटते हैं और उसका कितना भला चाहते हैं।'भई तुमने मेरी आँखें खोल दीं।' अब मैं भी ठीक से पढ़ाई में जुटूँगा।' गिरि ने पैसे देते हुए कहा। जिस बात को समझाते-समझाते उसके शिक्षक और पिता हार गए थे, वही बात एक अनजान लड़के ने अच्छी तरह समझा दी थी।

गिरि आलस्य छोड़कर पढ़ाई में जुट गया। प्रारंभ में तो पुस्तकों में ध्यान लगाने में उसे परेशानी हुई, फिर धीरे-धीरे मन लगने लगा और आनंद आने लगा। अब वह घर और स्कूल में डाँट भी नहीं खाता और सभी उससे प्रसन्न रहते हैं।

गिरि के इस परिवर्तन से सबसे अधिक आश्चर्य था उसके पिता को। जब उन्हें पूरी बात पता लगी, तो ठेले वाले बालक गोपाल के प्रति उनके मन में स्नेह और आदर उत्पन्न हुआ। उन्होंने गिरि को उससे मित्रता बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित किया। वह भी घर आने लगा। गिरि के माता-पिता उससे स्नेहपूर्ण व्यवहार करते थे। गिरि के पिता ने गोपाल को चार घंटे प्रतिदिन काम करने के लिए अपने यहाँ रख लिया। वह ठेल लगाकर जितना कमाता था, उतना ही पैसा उसे मिल जाता था। इस प्रकार वह धूप, पानी, सर्दी में सारे दिन इधर-उधर घूमते रहने से भी बच गया। गोपाल दुकान पर काम करके बचे हुए समय में मन लगाकर पढ़ाई करता था। गिरि को भी वह अपने साथ-साथ पढ़ने के लिए बैठा लेता था। उसकी कुछ कठिनाइयाँ होती थीं, वह भी दूर करता था। परीक्षा के लिए दोनों ने खूब परिश्रम किया। दोनों ही द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो गए।



सूझबूझ का फल

जुलाई का महीना था। नया सत्र अभी आरंभ हुआ था। अभी तो पूरी तरह पढ़ाई आरंभ भी न हो पाई थी, परंतु नेहा की कक्षा में यह दुर्घटना शुरू हो गई थी। हर दूसरे-चौथे दिन किसी लड़की की किताब गायब हो जाती। पहले तो ऐसा कभी न होता था। कक्षा में कौन चोर घुस आया है, सभी लड़कियाँ इसी की चर्चा किया करतीं।

कुछ दूसरे विभागों से आयीं थीं, तो कुछ दूसरे स्कूलों से। प्रायः उन्हीं पर संदेह होता, पर बिना प्रमाण के किसी को कुछ कहा भी कैसे जा सकता था? अध्यापिकाओं ने कह दिया था कि सभी अपने-अपने सामान की चौकसी रखें।

दूसरी छात्राओं की भाँति नेहा भी सावधान थी। वह घर से आते और जाते समय अपनी पुस्तकें ठीक से देख लेती थी। बीच में कहीं जाना होता तो सहेली से कहकर जाती। उस दिन अचानक ही किसी शिक्षिका ने किसी काम से बुला लिया। उसके तुरंत बाद ही गाइडिंग में जाना था, अतएव बहुत-सी छात्राएँ वहाँ चल गईं। शिक्षिका के पास से लौटकर नेहा ने भी जल्दी से अपना बस्ता उठाया और वहाँ से चली गई।

छुट्टी के समय प्रतिदिन की भाँति नेहा ने अपनी पुस्तकें संभाली, तो एक पुस्तक कम थी। उसने तुरंत खड़े होकर अध्यापिका को यह बताया। 'अच्छी तरह याद कर लो, तुम आज पुस्तक घर से लेकर आयी थीं।' उन्होंने कहा।

'जी, मैंने हिन्दी के घंटे में पुस्तक निकाल कर उसी से पढ़ा था। नेहा बोली। पास बैठी उसकी सहेली ने भी इस बात की गवाही दे दी।'

शिक्षिका असमंजस में पड़ गईं। चलते-चलते यह और मुसीबत आई। अभिभावकों की भी शिकायतें आ रही थीं और उन्हें कार्यवाही करने के लिए कहा जा रहा था। चोर कौन है? यह बात खुल ही नहीं पा रही थी। उन्होंने नेहा से कहा कि सबके बस्तों की तलाशी लो। नेहा को अपनी पुस्तक की अच्छी पहिचान थी। थोड़ी देर बाद एक लड़की की किताबें देखते समय वह ठिठक गई। एक किताब को उसने बार-बार उलट-पुलट कर देखा, फिर अध्यापिका से बोली- 'यह पुस्तक मेरी है।'

पुस्तक जिस लड़की के बस्ते में थी, वह तनकर खड़ी हो गई। 'अरे वाह, क्या कहने तुम्हारे!' मेरी किताब को अपना बताती हो, शर्म नहीं आती तुम्हें।'

तब तक शिक्षिका भी उन दोनों के पास आ चुकी थीं। उन्होंने पुस्तक को हाथ में लिया। फटी-मुड़ी सी पुस्तक थी। जगह-जगह स्याही के धब्बे पड़े थे। पुस्तक के प्रारंभ में कई पन्नों पर लिखा था- क्रांति।' उन्होंने नेहा की ओर देखते हुए कहा—'इस पर तो क्रांति का नाम पड़ा है-नेहा। और वैसे भी तुम तो अपनी किताबें बड़ी साफ-सुथरी रखती हो।'

'दीदी, यही मेरी किताब है। इसे झाड़कर, गंदा करके, तोड़-मरोड़कर ऐसा बना दिया गया है।' नेहा रुँआसी होकर बोली।

'यह तो मेरी पुस्तक है।' तुम इसे अपना कैसे बताती हो।' क्रांति बार-बार दृढ़ता से यही बात दुहरा रही थी।

शिक्षिका की कुछ समझ मे नहीं आ रहा था कि क्या करें? वह सोच ही रही थीं कि सचाई का कैसे पता लगाया जाए। इतने में नेहा क्रांति से बोली-'तुम्हारी पुस्तक है, तो तुम्हें इसकी खूब अच्छी तरह पहचान भी होगी। यह बताओ, तुमने इसमें कहाँ-कहाँ नाम लिखा है।'

क्रांति ने झट से तीन-चार जगह स्याही से लिखा अपना नाम दिखा दिया।'

बस और तो कहीं नहीं है न?' नेहा ने पूछा। 'नहीं' उसने तेजी से जबाब दिया।

नेहा ने पुस्तक अपने हाथ में ले ली और बोली-'यह नाम स्याही से बाद में लिखा गया है।'

फिर वह शिक्षिका की ओर उन्मुख होकर कहने लगी-'दीदी!' आप और क्रांति मेरे साथ पाँच मिनट के लिए गृहविज्ञान कक्ष में चलिए। सचाई अभी आपके सामने आ जाएगी।

शिक्षिका और क्रांति दोनों सोच रही थीं कि नेहा गृहविज्ञान की शिक्षिका से अपनी सिफारिश कराएगी। क्रांति रास्ते में मन ही मन कह रही थी-'वहाँ भी तेरी एक भी न चलने दूँगी। तूने मुझे समझ क्या रखा है?'

नेहा ने गृहविज्ञान कक्षा में जाकर जल्दी से गौरव का चूल्हा जलाया फिर पुस्तक का प्रारंभ का पन्ना आग से कुछ दूरी पर रखा। कुछ ही पल में वहाँ 'ने' अक्षर की पारदर्शी आकृति उभर आई। 'देखो यह रहा मेरा नाम वह खुशी से चिल्लाते हुए बोली।'

'अरे! यह क्या है?' शिक्षिका ने आश्चर्य से पूछा।

'हुँह, यह तो अभी-अभी कुछ कर लिया है।' क्रांति ने मुँह बिचकाया।

नेहा ने क्रोधित होते हुए कहा-'चलो अब अपनी आँखों से दुबारा, दूसरे पन्ने पर मेरे नाम का अक्षर देखो। तुम्हें डर है कि कहीं मैं कुछ कर लूँगी, तो अपने हाथ से पन्ना पकड़ो और आग से थोड़ी दूर पर रखो।'

क्रांति चुपचाप खड़ी रही। शिक्षिका ने नेहा को बताया पन्ना पकड़ कर आग से कुछ दूर रखा। गर्मी पाकर वहाँ 'ने' अक्षर पारदर्शी रूप में चमकने लगा।

अब नेहा जोश से कह रही थी-'अब भी कहोगी क्रांति कि यह पुस्तक तुम्हारी है। तुम्हारी किताब है, तो मेरा नाम कहाँ से आया बोलो।'

क्रांति अभी भी कह रही थी कि यह उसी की पुस्तक है। तब नेहा ने शिक्षिका को पूरी बात बतायी कि कक्षा में बार-बार चोरी होते देखकर उसने मोमबत्ती की नोंक से किताब के पन्ने पर दो-तीन स्थान पर 'ने' अक्षर डाल लिया था। मोम को तो झाड़ दिया, परंतु गर्मी पाने पर अक्षर पारदर्शी रूप में चमकने लगा था।

'तुम चोर ही नहीं ढीठ और धूर्त भी हो। रंगे हाथों पकड़ी गई हो, फिर भी सचाई स्वीकार नहीं कर रहीं।' शिक्षिका ने क्रांति को डाँटा। फिर वे उसे घसीटती हुई प्रधानाचार्या के ऑफिस में ले गईं। उन्होंने उसे खूब डाँटा, कान पकड़कर खींचे, सच न बोलने पर कॉलेज से निकाल देने की बात कही, तब कहीं जाकर उसने गलती स्वीकार की। प्राचार्या के ऑफिस के आगे लड़कियों का झुंड खड़ा था। क्रांति के बाहर निकलते ही 'क्रांति चोर, क्रांति चोर' कहकर चिल्लाना प्रारंभ कर दिया।

अगले दिन क्रांति को प्रार्चाया जी ने ऑफिस में बुलाया और कहा कि यदि वह अपने अपराध का प्रायश्चित कर ले, तो वे उसे कॉलेज में रखेंगी अन्यथा उसका नाम काट देंगी। क्रांति ने उन पर प्रश्नवाचक दृष्टि उठाई। वे बोलीं-'प्रायश्चित यह है कि तुम प्रार्थना के बाद मंच पर आकर अपना अपराध स्वीकार कर लो।'

क्रांति का चेहरा फक पड़ गया। इतनी छात्राओं के सामने वह चोर कहलाएगी यह सोच कर ही वह काँप उठी। 'मैं अपनी कक्षा में माँफी लूँगी।' उसने प्राचार्या जी से कहा।

'नहीं, तुम्हें पूरे कॉलेज की लड़कियों के सामने ही अपनी भूल माननी होगी। सोच लो तुम्हें भूल माननी है या कॉलेज से निकलना है।' उन्होंने दृढ़ता से कहा। 'यदि आज इसे न रोका गया, तो धीरे-धीरे इसकी यह आदत बढ़ती जाएगी और तब यह न जाने कितनी बड़ी चोरी करेगी।' वे मन ही मन सोच रही थीं और बुराई को न पनपने देने के लिए कृत संकल्प थीं।

अब क्रांति के सामने कोई विकल्प ही न था।

प्रार्थना के बाद वह धीरे से मंच पर आई और सिर नीचा करके खड़ी हो गई। 'अपना अपराध अपने मुँह से बताओ' मंच पर खड़ी प्राचार्या ने धीमे से कहा।

क्रांति ने किताबें चुराने की बात बता दी। इसके बाद वह वहीं फूट-फूट कर रो उठी। प्राचार्या ने एक शिक्षिका को संकेत किया। वे उसे कमरे में ले गईं। अब प्राचार्या ने छात्राओं को समझाया-'बच्चो! क्रांति ने आज बहुत बड़ा प्रायश्चित किया है। सोचो इससे बड़ा दंड और क्या हो सकता है कि वह आप सबके सामने अपनी गलती स्वीकार कर ले। अब इतना बड़ा प्रायश्चित करके आगे से वह गलती करेगी भी नहीं। गांधी जी का कथन याद रखो कि बुराई से घृणा करो, बुरे से नहीं। हम सबमें कुछ न कुछ बुराई है, हम उन्हें छोड़ें। क्रांति से अब आप कोई गलत व्यवहार नहीं करेंगी, न ही कुछ कहेंगी। उसे बहुत बड़ा दंड मिल चुका है। हाँ, क्रांति ने जो गलती की है, इसी प्रकार की कोई गलती आप नहीं करेंगी, यह आपको सबक लेना है।'

और इसी दिन के बाद सचमुच ही क्रांति ने कभी चोरी नहीं की। एक बार कठोर होकर शिक्षक या अभिभावक यदि बुराई की जड़ प्रारंभ में ही काट दें, तो आगे चलकर वह फैल-फूल नहीं पाती। प्रारंभ में ढील देने पर या 'अभी बच्चा है आगे सुधर जाएगा।' ऐसा सोचने पर तो अन्त में बस पछतावा ही शेष रहता है।



साहस का चमत्कार

सुखविन्दर अपने पड़ौसी कैप्टेन मनोजकुमार का बहुत आदर करता था। वे थे भी बड़े हँसमुख, मिलनसार और जिन्दादिल। सुखविन्दर को वे फौजी जीवन की रोमांचकारी सत्य घटनाएँ सुनाते थे, जिससे उसे भी बहादुरी की प्रेरणा मिलती थी। देश के लिए प्राण हथेली पर रखकर युद्ध क्षेत्र में जाने वाले इन जवानों के प्रति सुखविन्दर

के मन में गहरा आदर था। फिर मनोज चाचा तो उसे बेटे की भाँति स्नेह करते थे और मित्र जैसा व्यवहार करते थे। उनका बेटा अभय भी सुखविन्दर का घनिष्ठ मित्र था। यह पूरा का पूरा परिवार सुखविन्दर को इतना अच्छा लगता था कि कई-कई घंटे उनके साथ बिता देता था।

एक रात सहसा ही सुखविन्दर की आँख अचानक खुली। उसने कुछ शोर-सा सुनाई दिया। वह तुरंत खिड़की के निकट आया। उसकी निगाह अभय के घर पर गई, जो उसके घर के ठीक सामने था। वहाँ उसने हल्की-सी रोशनी में हथियारों से युक्त बारह-चौदह डाकुओं को देखा। उन दिनों गाँवों में प्रायः डकैतियाँ पड़ रही थीं और जान-माल का खतरा था। 'ओह! आज तो चाचाजी भी नहीं हैं, अकेला अभय क्या कर लेगा?' सुखविन्दर ने सोचा। वह तुरंत ही अपने घर से निकला और भाग कर उसने पड़ौसियों को अभय के यहाँ डाकू दल के आने की सूचना दी। कुछ पड़ौसियों को, जिनके पास हथियार थे, उन्हें जगाकर बाहर भेज दिया। चार-छः व्यक्तियों ने गली में मोर्चा जमाया। कुछ छत पर गए। सुखविन्दर कृपाण लेकर खिड़की के रास्ते अभय के घर में कूद पड़ा। उसने चुपके से उनकी आँख बचाकर बिजली की-सी फुर्ती के साथ ही सांकल खोल दी। डाकू दल घर में मनमाना उत्पात मचा रहा था। सुखविन्दर ने जाकर उन्हें ललकारा। डाकुओं ने उस पर हमला किया, पर वह डरा नहीं। उसने चाचाजी की रायफल ले ली थी, वह उसी से डाकुओं पर गोली चलाता रहा। इतने में दूसरे पड़ौसी भी दरवाजे से अंदर आ गए। इतने व्यक्तियों को देखकर अब डाकुओं ने अपनी कुशल न समझी और वे भाग खड़े हुए।

सुखविन्दर ने अपनी प्राणों की परवाह न करके जो साहस दिखाया था उसकी सभी ने बहुत ही प्रशंसा की। मनोज चाचा ने जब यह सुना तो उसे अपने हृदय से लगा लिया। उसी के कारण उसके

घर और परिजनों की रक्षा हुई थी। इसके लिए उन्होंने एक स्थायी उपहार भी सुखविन्दर को दिया। 'यह साहसी बालक तो निश्चित ही फौजी जीवन के योग्य है।' ऐसा सोचंकर उन्होंने सुखविन्दर को फौजी क्षेत्र में जाने की प्रेरणा दी। उन्होंने उसे राष्ट्रीय सुरक्षा अकादमी की प्रतियोगी परीक्षा में बैठाया और स्वयं परिश्रमपूर्वक पूरी तैयारी कराई। सुखविन्दर उस परीक्षा में अच्छे अंकों में उत्तीर्ण हो गया। उसके पिता उसकी पढ़ाई का खर्चा वहन नहीं कर सकते थे अतएव उसकी पढ़ाई का खर्चा भी मनोज चाचा ही देते। उनका बेटा अभय भी इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। दोनों साथ-साथ पढ़ने लगे। वे परस्पर एक-दूसरे को इतना अधिक स्नेह करते थे कि सभी उन्हें भाई ही समझते थे।



उपकार का मूल्य

मैत्रेयी की हाईस्कूल में न केवल प्रथम श्रेणी थी वरन बोर्ड में भी तृतीय स्थान था। उसकी इस उपलब्धि पर कॉलेज को गर्व था। उसकी जैसी प्रतिभाशाली छात्राएँ कॉलेज में कभी-कभी ही आती हैं। खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, वाद-विवाद आदि विविध कार्य-कलापों में भी वह अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करती थी।

मैत्रेयी को प्रथम आने के कारण दो छात्रवृत्तियाँ मिलीं, एक बोर्ड की और दूसरी मंडल की। यों तो दोनों पर ही उसका अधिकार था, परंतु वह सोचने लगी—'यदि एक छात्रवृत्ति में किसी अन्य छात्रा को दे दूँ, तो अधिक उपयोगी रहेगी। मैत्रेयी की कक्षा में ही एक छात्रा थी- अमल। सीधी-सी होशियार छात्रा। परीक्षा के दिनों में बीमार पड़ गई, तो चार अंक से उसकी प्रथम श्रेणी रह गई। पिता वृद्ध और सामान्य-

सी स्थिति के थे। वे उसे जैसे-तैसे बस पढ़ा रहे थे। अमला की प्रथम श्रेणी न आ पाने का मैत्रेयी को भी दुःख था। वह उसकी आर्थिक सहायता करना चाहती थी, परंतु यह भी जानती थी कि अमला बहुत ही स्वाभिमानी है। प्रत्यक्ष रूप से वह कभी सहायता न लेगी। मैत्रेयी ने विचार किया और अंत में उसे हल मिल ही गया। वह प्राचार्या के पास पहुँची और उन्हें अमला की पारिवारिक स्थिति बताकर यह सुझाव दिया कि वे उसकी एक छात्रवृत्ति अमला को दे दें। प्राचार्या को भला इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी। उन्हें तो मैत्रेयी के मुँह से ऐसी बात सुनकर बहुत प्रसन्नता हो रही थी।'

मैत्रेयी की छात्रवृत्ति अमला को दे दी गई। 'प्रथम श्रेणी तो है नहीं, छात्रवृत्ति कैसे मिल गई ?' इस बात से अमला आश्चर्यचकित थी। अंत में उसे किसी तरह सचाई पता लग ही गई। मैत्रेयी के इस व्यवहार से उसका हृदय कृतज्ञ हो उठा। मैत्रेयी कभी इस बात को मुँह पर भी न लाई थी जबकि व्यक्तियों का प्रायः यह स्वभाव होता है कि थोड़ा-सा भी उपकार करते हैं तो अनेक बार उसे गाते हैं और उपकृत व्यक्ति को अपने त्याग की याद दिलाते रहते हैं।

छात्रवृत्ति मिल जाने से अमला की पढ़ाई सुविधापूर्वक चल रही थी। अमला सोचा करती 'मैत्रेयी के इस उपकार से मैं उऋण तो नहीं हो सकती, पर मुझे भी इसके लिए कुछ करना चाहिए।' पर वह जल्दी ही कोई अवसर न खोज पायी। दोनों ही अगले वर्ष इंटर में आ गईं। कॉलेज की यह परंपरा थी कि सत्र के प्रारंभ में ही सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेलकूद, वाद-विवाद आदि की प्रतियोगिताएँ होती थीं। इनमें सर्वश्रेष्ठ छात्राएँ पुरस्कृत होती थीं, परंतु एक पदक ऐसा था, जो केवल उसी छात्रा को मिलता था जिसके न केवल पढ़ाई में सर्वोच्च अंक हों, अपितु सभी क्षेत्रों में एक ही छात्रा सर्वश्रेष्ठ रहे। अतः यह पदक अनेक वर्ष बाद किसी-किसी छात्रा को ही

मिल पाता था। पदक के साथ ही कॉलेज की ओर से ५०१) रुपए का उपहार भी दिया जाता था।

प्रतियोगिता प्रारंभ हुई तो अमला ने मन ही मन कुछ निश्चय किया। सांस्कृतिक कार्यक्रम और खेलकूद इनमें वह सदा ही सर्वोच्च रहती थी, पर इस बार जब इन प्रतियोगिताओं के आयोजन हुए तो अमला का प्रदर्शन अपने स्तर से बहुत गिरा हुआ था। सभी को आश्चर्य हो रहा था कि आज इसे हो क्या गया है। मैत्रेयी का प्रदर्शन बहुत अच्छा रहा। दोनों में ही वह सर्वप्रथम रही। इस प्रकार मैत्रेयी का नाम कॉलेज की उन विशिष्ट छात्रओं की सूची में आ गया, जो 'मेधाविनी' का पदक और पुरुस्कार पाती थीं।

दूसरे दिन अमला प्राचार्या कक्ष के सामने से निकली तो उन्होंने उसे बुलाया और कहा-'हम तो तुम्हें अंतर्विद्यालयीय प्रतियोगिता में बाहर ले जाने की बात सोच रहे थे, पर तुमने तो कल निराश ही कर दिया।'

एक शिक्षिका कह रही थी-'अमला तुम्हें कल हुआ क्या था? इतना निराशाजनक प्रदर्शन तो तुमने कभी नहीं किया था।'

अमला हँसते हुए कह रही थी-'दूसरे विद्यालयों से प्रतियोगिता हो तो आप मुझे भी ले चलिए। निराश नहीं होना पड़ेगा।'

प्राचार्या उसकी बात कुछ-कुछ समझ रही थीं। उन्होंने पूछा-'तुमने जानबूझकर ऐसा किया था न।'

अमला ने कुछ नहीं कहा, बस गर्दन झुकाकर धीरे से मुस्करा दी।

अमला के जाने के बाद शिक्षिकाएँ कुछ देर तक इसी विषय पर बात करती रहीं। वे कह रही थीं कि मैत्रेयी और अमला दोनों में से जिसकी जितनी प्रशंसा की जाए उतना ही कम है। धन तथा सम्मान की कामना में अंधे बने व्यक्ति गलत से गलत काम करने में भी नहीं झिझकते परंतु यहाँ तो दोनों ने ही त्याग का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। ◆

विजेता

शिव अपने पिता का सहारा बना हुआ था। स्कूल से आकर गृह कार्य पूरा करके, वह पिता के साथ ही काम में लगा रहता। खेतों की निराई, गुड़ाई, कटाई पशुओं की देख-रेख सभी में वह सहायता करता। वह अभी बालक ही था। पिता उससे खेलने के लिए कहते तो उसका उत्तर होता-'पहले आपके साथ काम कर लूँ, तब जाऊँगा।' वह सबसे बड़ा बेटा था। पिता की सहायता करना अपना उत्तरादायित्व समझता था। कम आयु में ही उसमें इतनी समझ न जाने कहाँ से आ गई थी?

एक दिन पिता शहर से बीज-खाद आदि खरीदने गए हुए थे। शाम का समय था। शिव बहुत देर तक खेत पर बैठा उसमें पानी की व्यवस्था करता रहा। जब पानी लग चुका तो वह ट्यूब बैल का स्विच बंद करने गया। जल्दी में उसने भीगे हाथ से जैसे ही उसे बंद किया, शिव की चीख निकल गयी। उसका हाथ तार से लग गया था, जिसमें करेंट प्रवाहित हो रहा था। शिव वहीं बेहोश हो गया। शोर सुनकर पड़ौसी किसान दौड़ा चला आया। उसने रबर की चप्पल पहन कर डंडे से तुरंत शिव को बिजली से अलग किया। थोड़ी देर में शिव के पिताजी और कुछ दूसरे व्यक्ति भी वहाँ इकट्ठे हो गए थे। वे तुरंत मुखिया की गाड़ी माँगकर लाए और उसमें शिव को डालकर तुरंत ही शहर ले गए।

शहर के अस्पताल में शिव को भर्ती किया गया। कुछ समय बाद शिव को होश तो आ गया, परंतु उसकी बाँह बेकार हो गई थी। डॉक्टरों ने चार-पाँच दिन तो इंतजार किया, परंतु फिर पता लगा कि उसकी

ठीक होने की कोई संभावना नहीं उल्टे उसमें गलन उत्पन्न हो गई है। यदि बाँह को न काटा गया, तो पूरे शरीर में सैप्टिक फैल जाएगा। शिव के पिता को आखिर बाँह काटने की अनुमति देनी ही पड़ी।

जिस दिन कटी बाँह लेकर शिव घर आया, उसे लगा कि उसके शरीर की पूरी की पूरी शक्ति ही कहीं चली गई है। वह हताश, उदास अपनी बाँह को देखता रहता। खाना-पीना सब छूट गया।

पिता से यह देखा न गया। एक दिन उन्होंने शिव को समझाया- 'बेटे इस तरह निराश होने क्या लाभ? यह तो सोचो कि कितना अच्छा हुआ कि तुम बच तो गए।'

बीच में ही शिव झुँझलाते हुए बोल पड़ा-'मर जाता तो अच्छा रहता......।' उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। वह सिसकते हुए कह रहा था-'अब मैं आपके साथ खेत में भी काम कर पाऊँगा.........।'

पिता ने उसका सिर थपथपाते हुए कहा-'बेटा ! खेत का काम करने के लिए मैं अकेला ही बहुत हूँ। तुम तो अब पूरा मन पढ़ाई में लगाओ। तुम खूब पढ़ो-लिखो, बस यही मेरी इच्छा है।'

दो-तीन महीने बाद शिव स्कूल जा पाया था। मास्टर जी ने उसे बड़ी सहानुभूति से समझाया था। कुछ लड़के भी उसके साथ सहानुभूति रखते थे। परंतु चार-पाँच महीने बाद ही कुछ उद्दंड और शरारती लड़के शिव को 'लूला' कहकर चिढ़ाने लगे। ये वे थे, जिन्हें वह कभी पढ़ाई में तो कभी खेल में हरा चुका था। शिव अभी भी पहले की भाँति खेल के मैदान में जाता, परंतु वह एक कोने में उदास खड़ा रहता था। पहले की भाँति वह खेल में भाग न लेता था। ये लड़के उसे चिढ़ाकर भागते। वह मन ही मन कट कर रह जाता। बात यहीं तक सीमित न थी। उद्दंड लड़के उसे अपंग और असहाय समझ कर जब तब पिटाई भी कर दिया करते।

एक दिन शिव खेल के मैदान में एक पेड़ के नीचे बैठा फूट-फूट कर रो रहा था। वह सोच रहा था कि कल से स्कूल नहीं आएगा। इतना अपमान उससे सहा नहीं जाता। तभी वहाँ से निकल रहे मास्टर साहब की दृष्टि उस पर पड़ी। वह बोले-'अरे ! क्या हुआ तुम्हें ? यहाँ कैसे ?'

शिव ने रोते-रोते उन्हें सारी बात बताई। मास्टर जी समझाने लगे-'देखो बेटे! तुम पढ़ाई छोड़ भी दोगे, तो क्या तुम चिढ़ाने वाले इन मूर्खों से बच पाओगे ? जीवन के हर मोड़ पर यह कहीं न कहीं तुम्हें मिल ही जाएँगे। ऐसे व्यक्तियों की बकवास से क्या तुम अपने जीवन का रास्ता बदल दोगे ? क्या तुम्हारा उन्हें यह सही उत्तर होगा ? नहीं कदापि नहीं।'

मास्टर जी की बात सुनकर शिव अपने आँसू पोंछने लगा था। वह बड़े ध्यान से उनकी बात सुन रहा था। वे कह रहे थे-'आँसू पोंछ डालो। अपने अंदर छिपी शक्ति पहचानो। शक्ति हाथ में नहीं है, शक्ति तुम्हारे मन में है। दृढ़ संकल्प बल से बढ़ो, सफलता मिलेगी।'

'मास्टर जी क्या मैं खेल सकता हूँ ?' शिव ने पूछा।

'हाँ क्यों नहीं! तुम बालीबॉल, बैडमिंटन, टेबिल टेनिस जैसे खेल आसानी से खेल सकते हो।' मास्टर साहब बोले।

मास्टर साहब की बातों का शिव के मन पर गहराई से असर पड़ा। वह बार-बार दुहराता 'शक्ति हाथ में नहीं मन में है।' दूसरे दिन जब वह स्कूल गया, तो उसका व्यवहार बदला हुआ था। वह दब्बू और झेंपू बनकर नहीं बैठा था, अपितु खेल के मैदान में भी सिर तानकर खड़ा था। वह भी खिलाड़ियों की टीम में चला गया और बोला—'अब मैं भी खेला करूँगा।'

'एक हाथ से' लड़के बोले।

'हाँ एक हाथ से तुम्हें हरा भी दूँगा।' शिव भी इस तरह कहने लगा।

अब वह पूरे मनोयोग से पढ़ाई और खेल में जुट गया था। उसके मन की झिझक और संकोच जा चुका थे। उसके मन में एक ही लगन थी—दो हाथ वाले लड़कों से आगे निकलने की। सच्ची लगन सफल होती है। जल्दी ही वह इतना अच्छा खेलने लगा कि टीम का कप्तान बना दिया गया। बैडमिंडन हो या बालीबॉल या फिर टेबिल टेनिस सभी में वह धूम मचा देता। गाँव की टीम प्रतियोगिता में शहर गई तो वहाँ भी शिव ने टीम को जिताया। जल्दी ही वह क्रीड़ा अधिकारियों की नजर में चढ़ गया। उन्होंने उसकी छिपी प्रतिभा को पहिचाना और प्रोत्साहित किया। प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर भी उसने खेलों में भाग लिया और पुरस्कार पाए। पढ़ाई में तो वह ठीक था ही। एम०ए० तक द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होता गया। क्रीड़ा की उसकी योग्यता और पदकों के आधार पर एक कॉलिज में शारीरिक प्रशिक्षक के पद पर नियुक्ति हो गई। सच है शरीर का कोई अंग-भंग होने से जीवन की उतनी बड़ी क्षति नहीं होती, जितनी कि मनोबल के भंग होने से होती है। मनोबल की दृढ़ता ही जीवन की सफलता का सच्चा केंद्र बिंदु है। जिसने इस रहस्य को जान लिया वही जीवन संग्राम का विजेता है।



साहसी सावित्री

हरियाणा के एक गाँव में सावित्री का परिवार रहता था। उसके पिताजी अध्यापक थे। बच्चों को भी उन्होंने साहस, कर्त्तव्यनिष्ठा और परिश्रम के संस्कार दिए थे। उनके तीन बच्चे थे। पंद्रह वर्ष की सावित्री सबसे बड़ी थी। उससे छोटे दो लड़के थे। सावित्री ग्यारहवीं

कक्षा की प्रतिभाशाली छात्रा थी। पढ़ाई के अतिरिक्त वह स्कूल के विविध काय्रक्रमों में भी भाग लेती और पुरस्कार पाती थी। घर और स्कूल में वह सभी की दुलारी थी।

सावित्री कुछ गंभीर स्वभाव की थी। बड़े होने के कारण वह घर के प्रति अपना उत्तरदायित्व अनुभव करती थी। वह देखती थी कि माँ घर के काम में जुटी रहती हैं और पिताजी स्कूल के बाद ट्यूशन करने में व्यस्त रहते हैं। दोनों ही कठोर परिश्रम करते थे, जिससे उनके बच्चे सुखी रहें। छोटे भाइयों को पढ़ाने का दायित्व सावित्री ने संभाल लिया था।

मार्च का महीना था। बोर्ड की परीक्षाएँ चल रही थीं। सावित्री रात में देर तक पढ़ती रही थी। उसकी आँख अभी लगी ही थी अचानक उसने कुछ खटर-पटर सुनी। सावित्री ने थोड़ी आँखें खोलकर देखा-उसके दोनों भाई सोए थे, कमरे का दरवाजा भी बंद था। उसकी आँखें फिर मुँद गयीं, पर थोड़ी देर बाद ही आँगन में धम-धम की आवाज सुनाई दी। अब सावित्री से न रहा गया। वह तुरंत खिड़की के पास गई और पर्दा उठाकर देखा। आँगन में तीन-चार आदमी कूद रहे थे। सभी का चेहरा नकाब से ढँका हुआ था। 'डाकू सहसा ही सावित्री अस्पष्ट स्वर में बोल पड़ी । उन दिनों गाँव में आए दिन डकैती की घटनाएँ हो रही थीं। सावित्री की आँखों के सामने यह दृश्य घूम उठा कि डाकू उसके घर का सारा सामान उठा ले जा रहे हैं। उसके पिताजी ने कठोर परिश्रम करके यह सामान जुटाया था। वह सिहर उठी। उससे न रहा गया। सावित्री भाग कर गयी और उसने पीछे से जाकर एक डाकू को कसकर पकड़ लिया और शोर मचा दिया। उसकी आवाज सुनकर दूसरे कमरे में सोए उसके माता-पिता भी जग गए। सावित्री के पिताजी तुरंत भाग कर वहाँ जाने लगे। डाकू-दल ने उन पर सामने से गोलियाँ चला दीं। गोली लगने से वे वहीं गिर पड़े। पिताजी को गिरते

देखकर भी सावित्री ने साहस न खोया। उल्टे उसने गुस्से में उस डाकू को और कस कर पकड़ लिया और खूब जोर से शोर मचाया। उधर सावित्री की माँ तथा भाई-बहिनों ने भी जोर-जोर से शोर मचाना प्रारंभ कर दिया। उनके घर के कोहराम तथा गोलियों की आवाज सुनकर पड़ौसी जाग गए। वे लाठी लेकर तुरंत सावित्री के घर दौड़ पड़े। डाकुओं ने जब उन्हें आते देखा तो भागने की कोशिश की, परंतु एक साथी तो सावित्री की पकड़ में था। उन्होंने उसे छुड़ाने की कोशिश की, परंतु सावित्री ने उसे कसकर जकड़ रखा था वह छूट न सका।' लाठी वाले व्यक्ति निरंतर पास आते जा रहे थे। उन्होंने गोलियाँ चलानी आरंभ कर दीं। कुछ गोलियाँ सावित्री को लगीं तो कुछ उस डाकू को, परंतु तब भी उसने पकड़ ढीली नहीं की। इतने में गाँव के व्यक्ति पास आ गए। अब डाकुओं को जान हथेली पर रखकर भागना पड़ा।

इतना संघर्ष करते-करते सावित्री बेहोश होने लगी थी। पड़ौसियों ने जल्दी से जाकर उसकी भिची मुट्ठियाँ खोलीं। डाकू भी गोली लगने से बेहोश हो चुका था दोनों को तुरंत अस्तपताल ले जाया गया। तुरंत उसे आपात कालीन कक्ष में भर्ती किया गया। बहुत-सा रक्त बह जाने के कारण उसके प्राणों को खतरा था। कई व्यक्ति रक्तदान के लिए तुरंत तैयार हो गए। सावित्री को कई बोतल खून चढ़ कर ही खतरे से बाहर घोषित किया जा सका।

उधर डाकू को पुलिस की देखरेख में छोड़ दिया गया था। उसका भी १५-२० दिन तक निरंतर उपचार हुआ। पुलिस ने खोजबीन करके पता लगाया कि वही उस गिरोह का नेता है। उसके गिरोह ने ग्रामीणों को खूब लूटा और सताया था। अस्पताल से छूटने पर पुलिस ने उस डाकू को जेल में डाल दिया और मार-मार कर सारा भेद उगलवा लिया। उसके गिरोह के और भी डाकू पकड़े गए। सभी को सजा हुई। गाँव में डकैतियाँ डालना बंद हुआ और शांति छा गई।

इसका मूल कारण सावित्री का साहस और शौर्य ही था। सभी सावित्री की प्रशंसा करते थे। गाँव की विविध संस्थाओं की ओर से सावित्री को सम्मानित और पुरस्कृत किया गया। इतना ही नहीं, राष्ट्रीय स्तर पर भी सावित्री को सम्मान दिया गया।



अंतःप्रेरणा

परीक्षाओं के थोड़े ही दिन शेष रहे थे कि निकुंज बीमार पड़ गया। पूरे वर्ष भी वह ठीक से नहीं पढ़ा था। सोचता था कि तीन-चार मास में तैयारी कर लेगा। अब इस आकस्मिक अस्वास्थ्य के कारण तैयारी का उतना भी समय न बचा था, वह परेशान हो उठा। कई बार यह भी विचार आया कि इस वर्ष परीक्षा ही न दे। कहीं अनुत्तीर्ण हो गया तो सभी मजाक बनाएँगे। अभी तक वह द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होता आया था, निकुंज पुस्तक खोलता तो और भी अधिक उलझन में पड़ जाता, क्योंकि बहुत-सा पाठ्यक्रम उसका बिना पढ़ा हुआ था। वह पुस्तक खोलकर भी ऊहापोहों में उलझा रहता। धीरे-धीरे परीक्षा एकदम समीप आ गयीं।

निकुंज का एक सहपाठी मित्र था-अमित। वह कभी-कभी उसके घर भी आया करता था। परीक्षा से तीन-चार दिन पूर्व निकुंज के घर आया, तो उसे बहुत परेशान देखा। निकुंज की परेशानी देखकर उसने परीक्षा में उत्तीर्ण होने का उपाय उसे धीमे से सुझाया।

'नहीं, नहीं मैं यह नहीं कर सकता।' निकुंज तुरंत बोल पड़ा।

'तो फिर इतने कम समय में और कुछ हो भी नहीं सकता।' अमित ने कहा। वह निकुंज को तरह-तरह से समझाता रहा कि इसी

वर्ष उत्तीर्ण होना है, तो थोड़ी-बहुत नकल करने में कोई हानि नहीं। वह इस बात के लिए भी तैयार था कि निकुंज के लिए नकल के पर्चे वह बना देगा, उन्हें कहाँ रखना है, कैसे उसका प्रयोग करना है-पूरी बात उसे समझा देगा। असमंजस की स्थिति में निकुंज चुप हो गया।

गलत करने वाला अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों में जल्दी ही दूसरे को फँसा लेता है और अपने रास्ते पर मोड़ लेता है। परीक्षा से एक दिन पूर्व अमित ने नन्हें-नन्हें अक्षरों में लिखे छोटे-छोटे पर्चे निकुंज को पकड़ा दिए। यही नहीं उन्हें रखने-निकालने-प्रयोग करने का पूरा ढंग समझा दिया।

अगले दिन परीक्षा में चार प्रश्न तो निकुंज के पढ़े हुए आए, परंतु दस नंबर का एक प्रश्न बिना पढ़ा था। अतएव वह पहले पढ़े हुए प्रश्नों के उत्तर लिखने लगा, परंतु उसका मन अस्थिर था। वह बीच-बीच में अपने नकल करने वाले मित्रों की ओर देखता जाता था कि वे कैसे यह कार्य कर रहे हैं? अनेक बार कक्ष निरीक्षक संदेह होने पर उनके पास आते और तलाशी लेते। दूसरों के पैंट-बुशशर्ट की तलाशी ली जा रही होती, पर घबराहट निकुंज को होती। कक्ष-निरीक्षक उसके निकट भी आता तो दिल की धड़कन तेज हो जाती साथ ही चोर निगाह से वह यह भी देख रहा था कि नकल के पर्चों का प्रयोग करने वाले पास बैठे उसके साथी को कितनी परेशानी हो रही है। वह कभी पर्चे को छिपा रहा था, तो कभी कक्ष-निरीक्षक की गतिविधियों देख रहा था। इसी चक्कर में उसका मात्र एक प्रश्न ही हो पाया था, जबकि दूसरा लड़का तीन प्रश्नों के उत्तर दे चुका था। 'तुम्हें सारे प्रश्न आते हैं।' उसके साथी ने पूछा। निकुंज के न कहने पर उसने उसे भी नकल के पर्चे निकालने का संकेत किया, पर अपने नकल करने वाले साथियों की स्थिति देख-देख कर

निकुंज का मन गलत करने का न हुआ। वह चार प्रश्नों के उत्तर देकर चुपचाप बैठ गया। उसके साथी ने इशारा किया कि बाहर जाकर देख आए। वह बाथरूम का बहाना करके गया और कागज निकाल कर खोले, पर उसकी यह समझ में नहीं आया कि वहीं अंधेरे में वह इतनी जल्दी कैसे उस प्रश्न का उत्तर याद कर ले। उसका मन उसे धिक्कारने लगा कि यदि पढ़ने में थोड़ा भी परिश्रम किया होता तो आज यह कठिनाई न होती। तभी उसे याद आया कॉलेज की दीवार पर सद्वाक्य लिखा हुआ था–'ईमानदार होने का अर्थ है हजारों मनकों में अलग चमकने वाला हीरा।' उसने अपने मन को दृढ़ किया, बेईमानी न करने का संकल्प किया और नकल के कागज वहीं फेंककर वापस कमरे में आ गया। उसे जितना उत्तर आता था, अपने मन से लिखने लगा।

बाहर निकल कर उसके साथियों ने उसका खूब मजाक बनाया, उसे डरपोक ओर दब्बू भी कहा, पर अगले दिन से वह किसी भी प्रकार से नकल करने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने स्पष्ट कह दिया कि जितना उसने पढ़ा है उतना ही लिख आएगा चाहे उत्तीर्ण हो अथवा अनुत्तीर्ण। नकल करके अंक पाने से योग्यता तो नहीं बढ़ जाएगी। उसके साथी उसका मजाक बनाते हुए चले गए।

नकल करने वाले छात्रों के समूह में से कुछ पकड़े गए। उन्हें पकड़े जाते देखकर ही निकुँज का मन काँप उठा। 'कहीं मैं भी पकड़ लिया जाता तो किसी को मुँह दिखाने लायक भी न रहता।' उसने मन ही मन कहा।

परीक्षाफल आया तो निकुंज द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो गया था। नकल करने वाले उसके सहपाठी या तो तृतीय थे या फिर अनुत्तीर्ण। योग्यता के नाम पर तो वे शून्य थे ही

निकुंज जब भी अपने किसी सहपाठी को अध्ययन में लापरवाही करते हुए देखता है–उसे अपनी स्थिति याद आ जाती है। वह अपने सहपाठी और मित्रों को प्रतिदिन नियमित रूप से पढ़ने के लिए प्रेरित करता है और स्वयं भी वर्षभर परिश्रम करता है। जो ज्ञान अर्जित कर लिया जाता है, वही समय पर सहायक सिद्ध होता है और वही सच्ची संपत्ति है। वह बात अब उसकी समझ में आ गई थी। अब वह परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होता है।



समझ

गौरी को बस एक शौक था, तरह–तरह की चीजें पकाने, खाने और खिलाने का। यों वह बहुत ही लापरवाह थी। घर का सामान अस्त–व्यस्त पड़ा रहता, इधर–उधर कपड़ों का ढेर पड़ा रहता, रसोई में आए दिन खाने–पीने की चीजें रखी सड़ती रहतीं, उसका ध्यान ही न जाता। कपड़े धोती तो ऐसे कि जेब में यदि रुपए पैसे रखे हों तो वह भी धुल जाएँ। पति ने कई बार समझाया था कि जेबें देखकर पैंट कमीजें धोया करो, पर सुनती, हँसती और टाल जाती। अस्त–व्यस्त कबाड़ी की दुकान जैसे घर से तो मानो उसने पूरी तरह समझौता ही कर लिया था।

उस दिन गौरी बाजार जा रही थी। सहसा ही उसकी दृष्टि सामने हैंगर पर लटके पति के सूट पर गई। 'अरे! इसे भी धुलने' देना है' उन्होंने सोचा। जल्दी तो थी ही, झट से सूट उतारा, थैले में डाला, और सहेली के साथ चल दी बाजार। वहाँ सबसे पहले उसे ही धुलने दिया, जिससे बोझा हलका हो।

तीसरे दिन पति महोदय ने अपना बैग खोला, तो वहाँ रुपए नहीं थे। वे ठेकेदारी का काम करते थे। पाँच हजार रुपए किसी को

देने के लिए परसों ही तो निकाले थे। 'कहाँ गए वे रुपए सूट की जेब में रख लिए थे। कुछ आवश्यक कागज भी उनके साथ थे। उन्होंने वहीं बैठे-बैठे आवाज लगाई-'गौरी, मेरा सूट तो लाओ जल्दी से।'

'कौन-सा सूट' गौरी बोली।

'वही कत्थई रंग का जो परसों पहना गया है।' पति बोले।

'वह तो मैं ड्राईक्लीनर को दे आई। परसों बाजार गई थी, लेती गई', गौरी बोली।

'अरे दे भी आई। उसकी जेबें देखी थीं तुमने?' पति हड़बड़ा कर उठते हुए बोले।

'नहीं तो, जल्दी थी, ऐसे ही ले गई।' गौरी ने उत्तर दिया।

पति महोदय सिर थाम कर वहीं बैठ गए। पूरे पाँच हजार रुपए और नए मिले ठेके के जरूरी कागज। कहाँ से लाएँगे वे उन्हें? कौन भला आदमी रुपए लौटा देगा? दो-चार सौ रुपए पाकर भी व्यक्ति लालची बन जाता है, उन्हें तो लौटाना नहीं चाहता फिर यहाँ तो पूरे पाँच हजार रुपए थे। उन्हें गौरी पर गुस्सा तो बहुत आया, पर बिना एक शब्द बोले खून का घूँट पीकर रह गए। समझ में नहीं आ रहा था, क्या करें? पत्नी के फूहड़पन से वे दुःखी थे। न जाने कितनी बार उन्हें समझाया था, पर वहाँ तो कोई असर ही नहीं था।

पति की बात सुनकर गौरी का सिर घूम गया।' आपको ठीक याद है, उसी कोट की जेब में रखे थे रुपए।' उन्होंने पति से पूछा।

'मुझे सौ प्रतिशत याद है कि बैंक से रुपए निकाल कर मैंने उसी कोट की जेब में रखे थे। बोले और कुछ पूछना है? कहो तो लिखकर दे दूँ?' अब पत्नी पर आया क्रोध बाहर निकलने लगा था।

पति के तेबर देखकर गौरी सहम गई। निस्संदेह बहुत बड़ी गलती तो ही ही गई थी। वे पति के पास जाकर अनुनय भरे स्वर में धीमे से बोलीं-'चलिए, चलकर ड्राईक्लीनर से पूछते हैं।'

'मुझे नहीं जाना कहीं' गुस्से में भरे पति का उत्तर था।

गौरी समझ गई, अब इनसे कुछ भी कहना-सुनना बेकार है। जो कह दिया, वहीं करेंगे। वह तुरंत बाजार भागी गई। पसीने में नहाई, हाँफती, हड़बड़ाई हुई पहुँची ड्राईक्लीनर की दुकान पर। घबराई हुई बोली-'भाई साहब! परसों में कत्थई रंग का एक जैंड्स ऊनी सूट धुलने के लिए दे गई थी। क्या वह धुल गया?'

'इतनी जल्दी तो नहीं धुला होगा। एक सप्ताह में आपको मिलेगा।' दुकानदार बोला।

'नहीं भाईसाहब! बात ऐसी है कि कहते हुए गौरी का गला सूख रहा था।' उसमें एक बादामी रंग का बहुत जरूरी लिफाफा रखा रह गया था। उसमें बहुत जरूरी कागज थे और साथ ही रुपए भी थे।' वह घबराते हुए बता रही थी।

'कितने रुपए थे?' दुकानदार ने पूछा।

'पाँच हजार।' धीमे से गौरी बोली।

दुकानदार ने दराज खोली, लिफाफा निकाला और गौरी को पकड़ाते हुए कहा-'सँभालिए इसे। धुलाई के समय कर्मचारी ने निकाल कर ईमानदारी बरतते हुए मेरे पास जमा करा दिया था। सोचिए यदि उसके मन में तनिक-सी भी बेईमानी आ गई होती तो! कपड़े दुकान पर देते समय आपको ध्यान तो रखना ही चाहिए न।'

गौरी सिर झुकाए खड़ी थी। वह अच्छी प्रकार समझ गई थी कि यदि दुकानदार के मन में भी बेईमानी आ गई होती तो रुपए कभी नहीं मिलते। आज वह सभी के सामने फूहड़ गृहिणी सिद्ध हो चुकी थी।

इस घटना ने लापरवाह गौरी को बिलकुल ही बदल दिया। पति हँसकर कहते हैं 'जो हुआ अच्छा ही अच्छा हुआ, तुम्हें समझ तो आई।'



हितैषी

विनीत का इस नए शहर में स्थानांतरण हुआ था। आज यहां वह पहले दिन ऑफिस आया था। उसने कुछ आवश्यक फाइलें मँगाने के लिए चपरासी को घंटी बजाई। जैसे ही चपरासी अंदर आया, दोनों कुछ पल एक-दूसरे को देखते रह गए, फिर चपरासी बड़े रूखेपन से वहाँ से चला गया।

विनीत को एक-एक करके पिछली बातें याद आने लगीं। दस वर्ष पूर्व यह चपरासी शरद, विनीत का सहपाठी था। इसके पिता स्कूल में प्राध्यापक थे। गाँव में उनकी खेती-बाड़ी भी थी। शरद उनका इकलौता बेटा था। माता-पिता के लाड़-प्यार ने उसे बिगाड़ दिया। वह कामचोर और आलसी बन गया। विद्यालय से इधर-उधर आवारा लड़कों के साथ घूमता-फिरता और पैसे बिगाड़ता। पिता लाड़ में कुछ न कहते। परीक्षाएँ होतीं तो उसे नकल करते हुए देखकर भी अध्यापक कुछ न बोलते। आठवीं की परीक्षा कभी फेल होकर और कभी नकल करके शरद ने जैसे-तैसे उत्तीर्ण कर ली।

प्रधानाचार्य का बेटा था इसलिए कोई उससे कुछ कहने का साहस न करता। पर अध्यापक और सहपाठी सभी उसके दुर्व्यवहार से परेशान थे। अपने आगे वह किसी को कुछ समझता ही न था। चाहे जब चाहे जिसका अपमान कर देता। जो छात्र पढ़ने में अच्छे थे, अध्यापकों से प्रशंसा पाते थे, उनका तो वह विशेष रूप से शत्रु था। शरद और उसके समूह के अन्य लड़के ऐसे छात्रों को तरह-तरह से परेशान करते। वे कभी रास्ते में अकारण उन्हें पीटते, कभी कापी के पन्ने फाड़ देते, कभी सब मिलकर उसका मजाक बनाते। विनीत का वह सब विशेष रूप से मजाक बनाते और अपमान करते

थे। कारण कि वह गरीब माता-पिता का लड़का था। उसके पास दूसरों की तरह अच्छे कपड़े-जूते आदि न थे और न ही खर्च करने के लिए पैसे थे। उसके घर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। उसके पिता जैसे-तैसे उसे पढ़ा रहे थे। विनीत अपने घर की स्थिति को अच्छी प्रकार से समझता था। अतएव वह जी-जान से पढ़ाई में जुटा रहता था, जिससे पढ़-लिखकर स्वावलंबी बन सके। विनीत का विद्यालय में सदा प्रथम स्थान आता था और इसी बात से शरद चिढ़ता था, पर वह जानता था कि उन लड़कों से उलझने या शिकायत करने से कोई लाभ भी नहीं है।

हाईस्कूल की परीक्षाएँ निकट थीं। पढ़ने वाले सभी बच्चे पढ़ाई में जुटे थे, पर शरद और उसके साथियों को आवारागर्दी से ही फुर्सत न थी। परीक्षाओं का उन्हें कोई डर भी न था। वे कुछ नकल करते, कुछ बातें करते और अनुत्तीर्ण होने पर भी उन्हें दुःख न होता।

तभी सहसा एक दुर्घटना घटी। शरद के पिता को अचानक हृदय का दौरा पड़ा और वे चल बसे। किसी ने ऐसी कल्पना तक न की थी। शरद तो इस स्थिति से भौंचक्का रह गया। घर में तो परेशानी थी ही, स्कूल में भी कम संकट न था। जो भी पुस्तक पढ़ने को उठाता, वही कठिन लगती। उसके मित्र भी उसे न पढ़ने के लिए ही प्रोत्साहित करते।

परीक्षा में शरद और उसके साथियों ने हर बार की भाँति नकल करने का प्रयास किया। नए प्रधानाचार्य सख्त थे और नकल के बिलकुल विरुद्ध थे। उन्होंने शरद से कई बार पर्चे छीने, उसे चेतावनी दी। अंततः एक दिन परीक्षाओं में निरीक्षण करने के लिए आए उड़नदस्ते ने उसे रंगे हाथों पकड़ लिया और तीन वर्ष के लिए निलंबित कर दिया।

विनीत की हाईस्कूल में प्रथम श्रेणी आई और वह शहर पढ़ने चला गया। शरद की माँ भी अपने बच्चों को लेकर भाई के यहाँ चली गई थीं। आज शरद को इतने वर्ष बाद देखकर भी विनीत तुरंत पहचान गया था। उसे दु:ख भी हो रहा था, यदि शरद पढ़ने-लिखने में मन लगाता तो अच्छे पद पर होता।

विनीत शरद से बात करना चाहता था, पर वह था कि उसे देखते ही कठोर मुख मुद्रा बना लेता। शरद अब भी वैसा ही उद्दंड और उच्छृंखलित था। उसे मन ही मन डर था कि विनीत उससे पुराना बदला न चुकाए। विनीत यद्यपि उसका ऑफीसर था, पर वह उसका तनिक भी सम्मान न करता वरन साथियों में बैठकर उसका तरह-तरह से मजाक बनाता। विनीत को यह सारी बातें पता थीं। फिर भी वह मन से उसका भला चाहता था और सोचता था कि किसी न किसी प्रकार वह उन्नति कर ले। उसने गरीबी का संकट झेला था। चार सौ रुपयों में शरद को अपनी पत्नी, माता और बच्चों का निर्वाह करने में कितनी कठिनाई होती होगी-यह भी समझता था।

'विनीत उसका अपमान करेगा' शरद की यह धारणा गलत सिद्ध हुई। शरद उसके साथ अच्छा व्यवहार करता था। अकसर उसके घर-परिवार आदि के विषय में सहानुभूतिपूर्वक पूछता रहता था। किसी अन्य कर्मचारी से उसने शरद के विरुद्ध कुछ न कहा। इसका परिणाम यह हुआ कि शरद का मन भी उसके प्रति बदलने लगा था। विनीत के एक बड़े औद्योगिक संस्थान के व्यवस्थापक से अच्छे संबंध थे उन्होंने शरद के विषय में उनसे बात की। वे विनीत के कहने पर शरद को अपने यहाँ रखने के लिए तैयार हो गए।

विनीत ने शरद के सामने यह प्रस्ताव रखा तो उसे सहसा विश्वास ही न हुआ। विनीत इस प्रकार उसका हितचिंतक है, यह तो उसने

सोचा भी न था। भावावेश में उसका गला रुँध गया। वह इतना ही कह पाया-'मैंने तो आपको बहुत तंग किया है....आपका यह उपकार....।'

'अरे उपकार की बात छोड़ो भी। तुम प्रगति करोगे तो मुझे प्रसन्नता होगी।' विनीत ने उसकी बात काटते हुए कहा।

विनीत ने अपने ऑफिस से शरद को एक वर्ष का अवैतनिक अवकाश दे दिया। छः मास की ट्रेनिंग के बाद शरद को वहीं नियुक्त कर लिया गया। ट्रेनिंग की अवधि में भी विनीत उसके परिवार की सहायता करता रहा।

अब शरद काफी बदल चुका था। वह मन लगाकर कार्य करता, जिसके परिणामस्वरूप वह प्रोन्नति करता गया। वह अपने परिवर्तन और उन्नति के लिए विनीत का आभारी है और उसका बहुत सम्मान करता है। सच है व्यक्ति तभी बदलता है, जब वह अंदर से बदलना चाहता है, अन्यथा उसे बदलने के सारे परिवेश और प्रयास मूल्यहीन हो जाते हैं और यह भी उतना ही सच है कि सच्चे अंतःकरण से किया गया सज्जनतापूर्ण व्यवहार कभी न कभी दूसरे पर प्रभाव डालता ही है।



अँधेरे के पार

अरुणेश आज सुबह से भटकते-भटकते थक गया था। वह बहुत देर तक एक उपवन में लेटा रहा, फिर कई घंटे बाजार में यों ही चक्कर लगाता रहा। पर दिन था कि कट ही न रहा था। चार-पाँच दिन से ऐसा ही हो रहा था। पूरा दिन अरुणेश को पहाड़ जैसा लगता था। वह सोच रहा था कि घर में था तो कुछ पता ही न लगता था कि कब सुबह हुई कब शाम। भाई-बहिन, माता-पिता, मित्रों के साथ

समय चुटकियों में ही बीत जाता था। कभी छोटे बहिन-भाई के साथ खेलना, उनसे रूठना-मनाना, कभी मित्रों के साथ खेलना, कभी पढ़ना, कभी घूमना-समय बड़ी खुशी-खुशी बीत जाता था। न कोई परेशानी थी, न चिंता। पर अरुणेश को भी न जाने क्या सूझी। कौन-सी कुघड़ी थी कि वह घर छोड़कर भाग निकला। वह अपनी दुर्बुद्धि को कोस रहा था। उसकी जेब में थोड़े से ही रुपए बचे थे। वह भी दो-चार दिन में समाप्त हो जाएँगे तो वह क्या खरीदेगा? कहाँ रहेगा? आज भी उसने सुबह से कुछ न खाया था। मन बहुत खिन्न था, कुछ खाने की इच्छा भी न हो रही थी। जबकि घर में तो वह सुबह-सुबह ही 'चाय लाओ, नाश्ता लाओ' की धुन से मम्मी को तंग कर दिया करता था। वह सोचने लगा कि अब कोई काम खोजे? क्या करे? काम भी उसे क्या मिल सकता था? वह तो हाईस्कूल फेल था। उसने अपनी आयु के बच्चों को गंदे-फटे कपड़े पहने चाय की दुकानों पर काम करते या फिर भीख माँगते देखा था। उनके बीच अपनी कल्पना करके ही वह सिहर उठा। अब उसकी समझ में आया कि पिताजी उसे क्यों डाटते थे कि वह पढ़े और अच्छे अंकों में उत्तीर्ण हो। परंतु अगले ही क्षण उसका मन फिर विद्रोह करने लगा। वह सोचने लगा कि कहने-सुनने की सीमा होती है। पिताजी तो जैसे दुश्मनों की भाँति हर समय उसके पीछे ही पड़े रहते थे। उस दिन तो अति ही हो गई। वह मित्र के साथ घूमने को निकल ही रहा था कि पिताजी झुँझलाए-'परीक्षा सिर पर हैं, पर साहबजादे को घूमने से ही फुर्सत नहीं है। अभी घूम ले फेल हो गया तब बताऊँगा। याद रखना घर में घुसने नहीं दूँगा।' उस समय वहाँ पिताजी के मित्र दो-तीन पड़ौसी भी थे। अरुणेश कटकर रह गया। सच तो यह था कि वह ढीठ बनता जा रहा था। पिताजी जितना उसे डाँटते, उतना ही वह उस बात को अधिक करता। कुछ उसके मित्रों की भी संगत

ऐसी थी कि उसका मन पढ़ने-लिखने में कम और घूमने में अधिक लगता। हाईस्कूल का परीक्षाफल आया तो धड़कते दिल से वह देखने गया। कई बार उसने देखा, पर उसका नाम कहीं भी न था। उसे कुछ न सूझा। 'घर जाने पर अब खैर नहीं इतना तो उसे निश्चित पता था। वहीं अपने एक-दो मित्रों से बहाना बनाकर उसने पचास रुपए इकट्ठे किए, कुछ रुपए उसके पास भी थे। वह सीधा रेलवे स्टेशन पहुँचा और यंत्रबद्ध-सा टिकिट लेकर गाड़ी में बैठ गया। यह तो अच्छा था कि उसने बहुत दूर के स्टेशन की टिकिट नहीं ली। वह पास के ही एक नगर में उतर गया और तभी से भटक रहा है। दो-तीन दिन बाद जब आवेश थोड़ा कम हुआ तो उसे होश आया कि वह क्या कर बैठा। पर अब घर जाना तो और भी मूर्खता होगी और भी बुरा होगा, ऐसा वह सोचता रहा। घर से अलग रहकर ठीक से जी पाना इतना कठिन है, यह तो उसने सोचा भी न था।

सोचते-सोचते वह एक चाय की दुकान के निकट पहुँच गया। लड़के को चाय बनाते देख उसे याद आया कि उसने सुबह से कुछ खाया भी नहीं। वह वहाँ बैठ गया और एक चाय तथा डबल रोटी का आदेश दिया। कुछ खा-पीकर अरुणेश फिर चल पड़ा-भटकने के लिए अपरिचित मंजिल की ओर। अभी तो दिन के बारह ही बजे थे। जून की धूप चिलचिला रही थी। वह कहीं ठंडक में बैठने की सोच रहा था। तभी सामने पुस्तकालय दीखा और वह उसी में घुस पड़ा। सोच रहा था-'अच्छा है कुछ देर ठंडक मिलेगी, और चिंता से भी छुटकारा मिलेगा।'

अनेक समाचार पत्र सामने की मेज पर पड़े थे। अरुणेश वहीं जाकर बैठ गया और उलटने-पलटने लगा। उसकी दृष्टि सहसा ही विज्ञापन वाले कॉलम पर पड़ी। वहाँ तो उसी का फोटो छपा था। उसने धड़कते दिल से पढ़ा, नीचे लिखा था—'१६ वर्ष का लड़का,

गौर वर्ण, नीली पैंट-शर्ट पहने दिनांक २०-६-८८ से लापता है, पहुँचाने वाले को मार्ग व्यय तथा उचित पुरस्कार दिया जाएगा।' नीचे उसके नाम संदेश भी था-'प्रिय अरुणेश! तुम्हारी माँ, पिताजी, बहिन-भाई सभी बहुत व्याकुल हैं। तुरंत घर चले आओ।' तुम्हारा पिता। अरुणेश का दिल घबराने लगा। चोर नजरों से उसने इधर-उधर देखा, कहीं कोई उसे देख तो नहीं रहा है। पुस्तकालय में उस तेज गर्मी में कम ही आदमी थे। वह कुछ देर अखबार की ओट में मुँह करके बैठा रहा। उसके सामने पिताजी, माताजी, भाई-बहिनों के चेहरे घूम रहे थे। 'तो पिताजी ने भी मुझे माफ कर दिया। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ, कैसा पागलपन कर बैठा' वह सोच रहा था। पर अभी भी उसे पूरी तरह विश्वास नहीं आ रहा था कि पिताजी उससे नाराज न होंगे। 'कहीं कोई देख न ले' इस भय से वह पुस्तकालय से भी जल्दी ही उठ गया । अब उसे अपने पकड़े जाने का भी डर लग गया था। वह किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँच पा रहा था। चलते-चलते एक बरगद की छाया में कुछ पल खड़े होकर सुस्ताने लगा। वहीं चादर फैलाए एक ज्योतिषी बैठा था। अरुणेश ने सहसा ही अपना हाथ उसके सामने फैला दिया। उसने उसे ऊपर से नीचे तक गहरी दृष्टि से देखा। लाल चेहरा, अस्त-व्यस्त वेषभूषा, मुँह पर चिंता की गहरी लकीरें, वह तुरंत समझ गया कि जरूर कुछ गड़बड़ है। ज्योतिषी तो अधिकतर मनोविज्ञान को पहचान कर ही बात बताते हैं। उसने कहा-'गलत कर रहे हो। रास्ता बदलो तभी सुख पाओगे।'

अरुणेश ने समझा कि ज्योतिषी ने हाथ देखकर सारी बातें पता कर ली हैं। उसने पूछा-'पिताजी नाराज तो न होंगे।'

'पिताजी के पास जाकर माफी मांग लो और सही कदम उठाओ। उन्हें भी सुख मिलेगा और तुम भी कुछ बन जाओगे।' ज्योतिषी अपने चश्मे को नाक पर से ऊपर चढ़ाते हुए बोला।

उसने तो एक सामान्य सी बात कही थी जो सभी पर घटित होती है, पर उस संकट की घड़ी में, उद्विग्न मनःस्थिति में अरुणेश को लगा कि यह महान ज्योतिषी है, सारी बात जान गया है, उसकी बात मानने में ही मेरी भलाई है। उसने बड़ी श्रद्धा से पाँच का नोट ज्योतिषी जी को चढ़ाया। 'बच्चा कल्याण होगा' उन्होंने भी आशीर्वाद दिया।

अब अरुणेश सीधा रेलवे स्टेशन पहुँचा। उसकी जेब में टिकिट लायक ही पैसे थे। टिकिट लेकर वह रेल में चढ़ा और धम्म से सीट पर बैठ गया। थकान और संतोष से उसकी आँखें मुदी थीं। उसे लग रहा था कि वह संसार के पार आ गया है। उसका मन भावुक हो उठा था। बार-बार सारी घटना और भटकन मन को भिगो रही थी। उसकी आँखें भर आयीं और वह सोचने लगा-'ओह! कितनी बड़ी भूल की मैंने। चलते-चलाते स्वयं ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली और भविष्य को अंधेरे में झोंक दिया । हे भगवान्! किसी प्रकार पिताजी और माँ से इस बार क्षमा माँग लूँ, तो फिर कभी उनकी आज्ञा नहीं टालूँगा। मेहनत से पढूँगा और उनकी आशाओं के अनुरूप बनूँगा।'

उसका मन तुरंत ही घर पहुँचने के लिए छटपटा रहा था और रेलगाड़ी उसे रेंगती-सी लग रही थी।



सच्चा स्काउट

दुर्गामन्यु होशंगाबाद जिले में रहता था। यद्यपि वह अभी किशोर ही था, पर था बड़ा साहसी। उसकी बहुमुखी प्रतिभा को देखते हुए उसके माता-पिता ने उसे अनेक बातों का प्रशिक्षण दिया था। दुर्गामन्यु एक अच्छा स्काउट भी था। स्काउटिंग ने भी उसकी प्रतिभा का पूरा-पूरा विकास किया था। वहाँ उसने अनेक प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया था। अपनी स्काउटिंग टीम का वह दलनायक था और उसके स्काउट मास्टर तथा शिक्षक वर्ग उसके कार्यों से बड़े प्रसन्न रहते थे।

होशंगाबाद जिले में नर्मदा नदी बहती है। दुर्गामन्यु नदी में नहाने का शौकीन था। वह प्रायः प्रतिदिन ही नदी में स्नान करने जाता। एक दिन दुर्गामन्यु नहाने गया तो उसने देखा कि एक लड़की नदी में डूब रही है। उसके अभिभावक किनारे पर खड़े चिल्ला रहे हैं। तैरना न जानने के कारण वे नदी में कूदने से झिझक रहे थे। नदी का बहाव बहुत तेज था, ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं।

दुर्गामन्यु को तैरना आता था। लड़की और उसके अभिभावकों की करुण पुकार सुनकर वह अपने आपको रोक न सका और तुरंत नदी में कूद पड़ा। वह नदी की तेज लहरों को चीरता हुआ उस स्थान की ओर बढ़ने लगा जहाँ बालिका डूब रही थी, पर जैसे ही वह उस स्थान पहुँचा बालिका डूब चुकी थी। ऊपर से उसका कुछ अता-पता न था। दुर्गामन्यु अब संशय में पड़ गया कि पता नहीं बालिका कहाँ डूबी है। तभी उसे एक स्थान पर बुलबुले उठते दिखाई दिए। उसने तुरंत पानी में नीचे डुबकी लगा दी। वहाँ कुछ देर खोजने पर

लड़की मिल गई। दुर्गामन्यु उसे पानी की सतह पर ले आया, पर इस बीच वह लड़की इतना घबरा गई थी कि वह दुर्गामन्यु से कस कर लिपट गई। अनेक बार कहने पर भी उस लड़की ने दुर्गामन्यु को न छोड़ा। दुर्गामन्यु अब तैर भी नहीं पा रहा था। अतएव उसने जबरदस्ती जैसे-तैसे उससे अपने आपको छुड़ाया और लड़की को बड़ी कठिनाई से पकड़कर किनारे तक लाया।

अपनी बच्ची को सकुशल पाकर अभिभावक बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने दुर्गामन्यु का अत्यधिक आभार व्यक्त किया। 'अरे! यह तो मेरा कर्त्तव्य था' उनकी बात सुनकर विनीत दुर्गामन्यु कहने लगा।

दुर्गामन्यु की इस बहादुरी का समाचार उसके विद्यालय तक भी पहुँच गया। प्रधानाचार्य और सभी शिक्षक दुर्गामन्यु से अत्यधिक प्रसन्न हुए । उन्होंने उसे विशिष्ट पुरस्कार दिया। स्काउट मास्टर कहने लगे-'दुर्गामन्यु, तुमने स्काउट के कर्त्तव्य का बहुत अच्छी तरह पालन किया है।'

'ईश्वर मुझे जीवन भर इस कर्त्तव्य को पूरा करने की शक्ति दे।' दुर्गामन्यु बोला।

'हाँ, तुमसे हमें ऐसी ही आशा है' वे कहने लगे।

दुर्गामन्यु को अपने इस सत्कार्य के लिए प्रधानमंत्री से राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। होनहार प्रतिभाशाली बालक-बालिका ही राष्ट्र की सच्ची संपत्ति होते हैं। उनका उज्ज्वल भविष्य ही राष्ट्र और समाज का आशापूर्ण भविष्य होता है, क्योंकि आने वाले समय में वही देश के नागरिक और समाज के कर्णधार होंगे।



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा